प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगाव, बम्बई ।
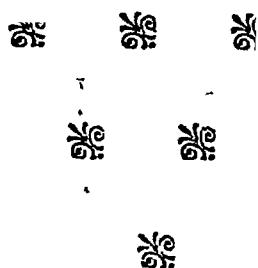
मुद्रक—
अनंत आत्माराम मोरमकर
श्रीलक्ष्मी-नारायण प्रेस
४०२ ठाकुरद्वार बंबई नं. २

विषय-सूची।

पृष्ठसंख्या

निवेदन ।

श्रीयुक्त बाबू सूरजभानुजी वकील जैनसमाजके वयोवृद्ध और अनुभवी विद्वान् हैं। जैनसमाजकी उन्नतिके लिए आपने अनेकानेक प्रयत्न किये हैं। आपके जीवनका बहुतसा भाग जैनसमाजको जगानेमें ही व्यतीत हुआ है और अब तो आप अपना सारा ही समय इसी कार्यमें लगा रहे हैं। इस कार्यके लिए आपने अपनी 'वकालत' छोड़ दी है और अब आपके जीवनका केवल यही एक 'व्रत' बन रहा है।

इन दिनों आपका अधिकांश समय पुस्तकें और लेख लिखनेमें व्यतीत होता है। पिछले दो तीन वर्षोंमें आपकी लेखनीसे कई अच्छी अच्छी पुस्तकें निकली हैं और उनसे सर्व साधारणका बहुत ही उपकार हुआ है।

आप बड़े ही निर्भीक और निष्पक्ष लेखक हैं। बौद्धिक दासता या गुलामगीरीसे आपको बड़ी चिढ़ है। आपकी समझमें मनुष्यजातिकी उन्नतिके लिए यह गुलामगीरी बहुत ही बड़ी बाधा है। इसी लिए आपकी पुस्तकों और लेखोंका झुकाव मनुष्यकी निष्पक्ष सदसद्विवेक बुद्धिको जागृत करनेकी ओर ही विशेष रहता है।

यह 'जीवन-निर्वाह' आपकी ही लिखी हुई पुस्तक है। यह तो खास तौरसे पूर्वोक्त बौद्धिक गुलामगीरीसे सर्वसाधारणको मुक्त करनेके अभिप्रायसे लिखी गई है। हिन्दीमें यह अपने ढंगकी अपूर्व चीज समझी जायगी। मनुष्य-

समाजकी ऐहिक उन्नति और सुखशान्तिकी वृद्धि जिन जिन आचार-विचारोंसे हो सकती है, इसमें मुख्यतः उन्हींका प्रतिपादन किया गया है, और सभी धर्मविहित आचारोंको ऐहिक सुख-शान्तिके लिए आवश्यक बतला दिया है।

सभी धर्मोंके अनुयायी इस पुस्तकसे लाभ उठा सकेंगे और लोकमूढता, धर्ममूढ़ता, तथा देवमूढ़ताके अन्धभावोंसे अपना छुटकारा कर सकेंगे। पुस्तककी भाषा और लिखनेका ढग ऐसा है कि, मामूली पढ़े लिखे लोग भी लेखकके भावोंको सहज ही समझ लेंगे।

इस पुस्तकका सर्व साधारणमें जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही देशका कल्याण होगा। हम आशा करते हैं कि इस पर देशहितैपी सज्जनोंका ध्यान आकर्पित होगा और वे इस बातका प्रयत्न करेंगे कि यह पुस्तक प्रत्येक घरमें आदरके साथ पढ़ी जाय।

यहाँपर हम कमिश्नरी-कोर्ट आगराके सरिश्तेदार बाबू अजितप्रसादजी जैनकी प्रशसा किये विना नहीं रह सकते, जिन्होंने अपने भानजे चिरजीवि जयप्रकाशजीके विवाहकी खुशीमें इस पुस्तककी ५०० प्रतियां विना मूल्य वितरण करके लेखकके परिश्रमकी कदर की है। विवाहादि मांगलिक उत्सवोंके समय इस प्रका'का दान प्रत्येक धर्मात्माके लिए अनुकरणीय है।

यदि और कोई सज्जन इस पुस्तककी कमसे कम सौ सौ प्रतियॉ मुफ्त बॅाटनेके लिए लेंगे तो उन्हें इसके प्रकाशक बहुत कम मूल्यमें देनेका सुभीता कर देंगे।

निवेदक—

ज्योतिप्रसाद जैन

(सम्पादक, जैनप्रदीप।)

जीवन-निर्वाह ।

१ सभ्यताका प्रारम्भ ।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीडे-मकोडे आदि अनेक प्रकारके जीव संसारमे भरे पड़े हैं,-ये सब खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते, मिलते-जुलते, लड़ते-झगड़ते संतान पैदा करते और उनका पालन-पोषण करते ह। इनमसे हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस आदि कई जीवधारी डीलडौलमे मनुष्यसे बहुत बड़े है, और शेर, चीता आदि कई जीवधारी उससे ताकतमे भी अधिक है; परन्तु नई नई बातोके निकालनेकी बुद्धि और आपसमे बातचीत करनेकी शक्ति ये दो बाते मनुष्यमे ऐसी हैं जो अन्य जीवोमे नहीं पाई जातीं। इन्हीं दो बातोके कारण मनुष्यका बड़प्पन और मनुष्यत्व ज़ाहिर होता है। मनुष्यके सिवा जितने जीव हैं वे सब अपने अपने स्वभावके अनुसार सदासे एक ही प्रकारका जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं। लाखो करोड़ो वर्ष बीत जाने पर भी उन्होने अभीतक अपने जीवन-निर्वाहकी विधिमे जरा भी उन्नति या अदल-बदल नहीं की, और न भविष्यमे कुछ अदल-बदल करनेकी आशा ही है। यह सच है कि इनमेंसे कई जीवधारी बड़ी बड़ी होशयारी और कारीगरीका काम करते हैं कि जिसे देखकर मनुष्य-बुद्धि भी आश्चर्य्यचकित हो जाती है; जैसे-मकड़ीका जाला बुनना और शहदकी मक्खियोंका छत्ता बनाना आदि। लेकिन मकड़ी जैसा जाला आज पूरती है वैसा ही वह सदासे पूरती आ रही है, इसी-प्रकार मक्खियाँ भी जैसा छत्ता आज बनाती हैं वे सदासे वैसा ही

बनाती आ रही हैं। यही कारण है कि किसी मकड़ीके पूरे हुए एक जालेमें यदि छह कौने हैं तो उस जातिकी सभी मकड़ियोंके जालेमें छह कौने ही होगे। यह कभी नहीं हो सकता है कि एक ही जातिकी मकड़ियोंमें कोई तो छह कौनेका जाला पूरे और कोई पॉच या सातका। एक जातिकी सभी मकड़ियोके जालेमे एक ही प्रकारके कौने होगे। यही बात मक्खियोमे भी पाई जाती है। यदि उनके एक छत्तेकी कोठरियाँ पॉच पाँच कौनेकी है तो उस जातिकी मक्खियोंके सभी छत्तोंकी कोठरियॉ सर्वत्र पाँच ही कौनोकी मिलेंगी, इसमें किसी प्रकारकी कमी वेशी न कभी उन्होने की है और न वे कर सकती है। इस लिए बुद्धिमानोका कथन है कि मकड़ीका जाला, मक्खियोका छत्ता और वया पक्षीका घोंसला आदि जितने वड़े वड़े चतुराईके कार्य्य इन जीवोमे दिखाई देते हैं उनको वे अपने विचार-बलके द्वारा नहीं, किन्तु अपनी अपनी प्रकृति या स्वभावके अनुसार ही करते है। यही कारण है कि वे उक्त कार्य्य बिना देखे और बिना सीखे ही कर लेते है। उदाहरणार्थ यदि किसी वया पक्षीका अडा किसी गुप्त स्थानमे रखकर किसी अन्य जातीय पक्षी द्वारा सेया (पोपित किया) जाय, तो उससे निकला हुआ वयाका बच्चा भी बड़ा होकर वैसा ही घोसला बनावेगा जैसा कि अन्य वये बनाते हैं। इसी लिए विद्वानोने इन जीवोकी इस चतुराईको विचार-शक्ति-जन्य नहीं, किन्तु पशु-प्रकृतिजन्य Instinct of Brutes ही बतलाया है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये जीव कोई नवीन बात सीख ही नहीं सकते, बल्कि इसका मतलब केवल इतना ही है कि वे अपनी बुद्धिसे कोई नवीन बात पैदा नहीं कर सकते हैं। विचारबुद्धिकी हीनताके कारण ही ये जीव अपने खाने-पीने आदिके लिए किसी प्रकारकी कोई वस्तु नहीं बनाते है और न उसके लिए किसी प्रकारकी मिहनत ही करते हैं। इनको तो जो कुछ बनी बनाई वस्तु

मिल जाती है उसी पर वे अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार जीवन-निर्वाह किया करते है। परन्तु मनुष्यने अपने बुद्धिबलसे अर्थात् नई नई बातोंके निकालनेकी शक्तिसे अपने आरामके वास्ते अनेक अद्भुत और उपयोगी बाते निकाल ली हैं, और वह आगेको और और नवीन नवीन तर्कीबे निकालता ही जा रहा है। देखो, पशुगण सदासे कच्चे फल मूल, कच्चा मांस और कच्चा घास-पात ही खाते हैं, जिसके पचानेके लिए उन्हें अपनी जठराग्निसे बहुत काम लेना पड़ता है, इतने पर भी वे उसे बहुत ही कम पचा सकते हैं, जिससे बहुत भोजन करने पर भी उन्हे बहुत ही थोड़ा रस मिलता है और इसी लिए इन जीवोंको दिन भर खाने और मल-मूत्र त्यागनेके सिवा दूसरा काम ही नहीं रहता है। परन्तु मनुष्यने पहले तो यह बात खोज निकाली कि खानेकी वस्तुको अग्निमे पका लेनेसे पेटकी पाचन-शक्तिको बहुत कम काम करना पड़ता है, और थोड़ा खानेसे ही इतना रस निकल आता है जो शरीरके पोषणके लिए यथेष्ट हो जाता है। इसके वाद मनुष्यने यह भी ज्ञात किया कि भोजनके साथ थोड़ासा नमक खालेनेसे खाना और भी आसानीके साथ पच जाता है। इन बातोके ज्ञानसे उसका पशुओके समान दिन भर खानेका काम छूट गया और उसको अपने सुखकी अन्य सामग्री जुटानेके लिए बहुत अवकाश मिल गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे मनुष्यने मिट्टीके वर्तन बनाकर उनको आगमे पकाना और फिर उनमे अपना भोजन बनाना सीखा। फिर उसने पत्थरोको तोड़-फोड़कर तथा खोद या घिसकर भी अनेक प्रकारके बर्तन, औजार तथा हथियार बनाना प्रारंभ किया। इसी प्रकार वह काँसा, ताँबा आदि नरम धातुओंको आगमे गलाकर उनको साँचेमे ढालना या ठोक पीटकर अनेक प्रकारकी उपयोगी वस्तुएँ बनाना सीख गया। अन्तमें लोहे जैसे कड़े पदार्थको भी काममें

लानेकी विधि उसे मालूम हो गई। इसी प्रकार सरदी गरमीसे अपना शरीर बचानेके लिए पहले तो मनुष्यने हिरण आदि पशुओंका चमड़ा ओढ़ा, फिर वृक्षोंके पत्ते और छाल लपेटी, फिर वृक्षोंकी छालसे मोटा-झोटा बुनना शुरू किया, फिर वह पशुओंके लम्बे लम्बे बालोंको लेकर कम्बल बुनने लगा, वृक्षोंकी छालके रेशोंसे डोरी बटकर उनसे टाट बुनने लगा और इस प्रकार अन्तमें वह रूईका कपड़ा भी बनाने लग गया। इसी प्रकार वर्षा और धूप आदिसे बचनेके लिए पहले तो उसने वृक्षोंपर घास-फूस डालकर छप्पर सा बनाया, फिर वृक्षोंकी पतली पतली छड़ियों और बाँसोंको बाँधकर उनका एक छप्पर बना कर वृक्षोंपर डाला, फिर छप्परके ही दो पल्ले बनाकर और उनको जमीन पर तान कर बरसा बनाया, फिर मिट्टीकी दीवालें खड़ी करके उनपर छप्पर डालना शुरू किया, इसके बाद वह फूसकी जगह मिट्टीकी खपरैल आगमें पकाकर उपयोगमें लाने और ईंटें बनाकर ईंट तथा पत्थरकी दीवालें बनाने लगा। कुछ समयके उपरान्त जब उसने इस काममें और तरक्की की तब वह छप्परके स्थानमें कड़ियाँ डालकर कच्ची तथा पक्की छतें बनाने लगा।

इस प्रकार मनुष्यने केवल कारीगरीहीमें उन्नति नहीं की, वरन् प्रकृतिसे पैदा होनेवाली वस्तुओंमेंसे जो जो वस्तुएँ उसने अपने कामकी समझीं, उन सबको भी वह उत्पन्न करने लगा। कई जगहोंसे उनके बीज लाकर और उनके पैदा होनेका मौसम आदि जाँचकर उनका बोना शुरू किया। फिर उनकी पैदावार बढ़ानेके लिए जमीनके झाड़ वगैरह साफ करके और जमीनको हल आदिसे पोली तथा फुस-फुसी करके उसमें खाद डालना शुरू किया। फिर जरूरतके समय कुए तालाब आदिसे पानी सींचकर और खेतमें उत्पन्न होनेवाले घास-फूस आदिको नींदकर तथा जंगली जानवरों और पक्षियोंसे उसकी पूरी पूरी रक्षा करके वह प्रकृतिसे कई गुनी

फसल पैदा करने लगा। फिर उसने पैदा किये हुए अनाजको बहुत समयतक सुरक्षित रखनेका तरीका निकाल कर अपनी जरूरतोंको बहुत कुछ पूरा करना सीख लिया।

इसी रीतिसे मनुष्यने अनेक प्रकारकी ओषधियाँ ढूंढ़ निकालीं कि जिनके द्वारा वह अपनी सब प्रकारकी बीमारियोसे रक्षा करने लगा। जंगलके अनेक जानवरोको पकड़कर उससे सवारी, बारबरदारी, और खेती आदिका काम लेने लगा और जिन जानवरोका दूध फायदेमंद मालूम हुआ उनका दूध पीने लगा। फिर दूधसे खीर आदि अनेक प्रकारके भोजन बनाना और उससे दही जमाना तथा घी निकालना भी सीख गया। धीरे धीरे घीसे वह अनेक प्रकारके सुस्वादु और पौष्टिक भोजन बनाने लग गया।

मनुष्यके ये सब कार्य्य बढ़ते बढ़ते इतने ज्यादा बढ़ गये कि एक आदमीके लिए आप ही अपनी सब जरूरतोंको पूरा कर लेना असम्भव हो गया; परन्तु मनुष्यमे नवीन बाते खोज निकालनेका बुद्धिके सिवा जानवरोसे एक और विशेषता यह है कि वह बातचीत द्वारा अपने मनके भाव दूसरो पर व्यक्त कर सकता है। वह अपने मनकी बात दूसरोसे कह सकता है और दूसरोके दिलकी बात सुन सकता है। इस आपसकी बातचीतके द्वारा मनुष्यने अपने आरामके लिए अनेक बातोका प्रबन्ध कर लिया। उसने अपनेसे बहुत बलसंपन्न पशुओतकको अपने वशमे कर लिया। क्योंकि जो बात एकको सूझती, वह अपनी बात दूसरोको सुनाता रहा और इस प्रकार सभी लोगोकी खोज और सभी मनुष्योके विचार सब लोगोको मालूम होते गये। इस प्रकार दिन पर दिन उसके ज्ञानकी वृद्धि होती गई और वह बड़े बड़े कठिन और अद्भुत कार्य्य करने लगा। सच तो यह है कि मनुष्यमें चाहे जितनी बुद्धि क्यो न होती—वह नवीन नवीन बातोंके निकालनेमे कितना ही कुशल क्यो न होता, परन्तु यदि उसमे आपसमें

बातचीत करने और अपने विचार दूसरो पर प्रकट करनेकी शक्ति न होती तो वह कुछ भी उन्नति न कर सकता और अन्य प्राणियोंके ही समान निम्नदशामे पड़ा रहता। इस वचनशक्तिकी बदौलत उसने अपने आरामकी नई नई वस्तुएँ बना लीं और उनके बनते रहनेका भी उत्तम प्रबन्ध कर लिया; क्यो कि जब मनुष्यके आवश्यक पदार्थोंकी संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि अपने उपयोगमे आनेवाली वस्तुओको जुटाना और उन सबको स्वतः बनाना उसके लिए असम्भव हो गया, तब उसने पृथक् पृथक् मनुष्योको पृथक् पृथक् काम हाथमे लेने और उस कार्य्यमे पूर्ण दक्षता प्राप्त करनेकी विधि निकाली। इस प्रकार खास खास आदमी खास खास कामोमे बहुत होशयार होने लगे और वे अनेक प्रकारके कामोको छोड़कर एक ही प्रकारका काम करने लगे। जब उनको अन्य चीजोकी जरूरत पड़ी तब वे अपनी बनाई हुई चीजोका दूसरोकी बनाई हुई चीजोंसे बदला करने लगे या अपनी किसी कारीगरी अथवा चतुराईके बदले दूसरोसे कारीगरी या चतुराईका काम कराने लगे। इसी समयसे लुहार बढ़ई, जुलाहा, कुम्हार, राज, पत्थर तराशनेवाले तथा खेती करनेवाले कृषकों आदिका अलग अलग पेशा हो गया, और ऐसा होनेसे मनुष्यकी हजारो जरूरतकी चीजे धड़ाधड़ तैयार होने लगीं। इस प्रकार धीरे धीरे मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहमे बहुत उन्नति हो गई।

इस उत्तम प्रबन्धका यह फल हुआ कि दुनियाका कोई भी आदमी जो कुछ काम बनाता उसका लाभ दुनिया भरके लागोंको होने लगा और होते होते इस महान् सुविधाको लोगोने यहॉ तक अपनाया कि दुनिया भरकी बनी हुई चीजोको लिये बिना, केवल अपनी ही बनाई हुई चीजों पर जीवन-निर्वाह करना बिलकुल ही असम्भव हो गया। उदाहरणस्वरूप, अगर कोई आदमी इस बातकी प्रतिज्ञा करे कि मैं

दूसरोंकी बनाई हुई चीजोको उपयोगमे न लाऊँगा और केवल अपनी ही बनाई हुई चीजो पर गुजारा करूँगा, तो उसको सबसे पहले पेट भरनेके लिए अनाजकी ज़रूरत पड़ेगी और उसकी प्राप्तिके लिए उसे खेती करनी पड़ेगी। खेती करनेके लिए हल और कई तरहके औजारोकी जरूरत पड़ेगी कि जिसके लिए उसे लुहार और बढ़ईका काम सीखना होगा। यही नहीं, लोहेकी खानिका पता लगाकर उसे लोहा लाना होगा और उस लोहेसे बढ़ई तथा लुहारके औजार बना कर फिर उनके द्वारा काश्तकारीके औजार–हल, बखर, कुसिया, पाँस आदि–बनाने होगे। इस प्रकार अनेक कठिनाइयोके पश्चात् अनाज उत्पन्न कर लेने पर भी आटा पीसनेके लिए चक्कीकी ज़रूरत पड़ेगी और उसके बनानेके लिए उसे पत्थर गढ़नेका काम सीखना पड़ेगा। रसोईके बर्त्तनोके लिए ताँबे और पीतलकी खानियोसे ताँबा पीतल लाना तथा ठठेरेका काम सीखना होगा, या कुम्हारका काम सीखकर मिट्टीके बर्तन बनाने पड़ेंगे। अब नमकके बिना भी काम न चलेगा, अतएव नमककी खानि पर जाकर नमक लाना होगा, तब कहीं उसे रोटी मयस्सर होगी। परन्तु ये सब काम एक आदमी अपनी सारी उमरमे भी पूरे नहीं कर सकता। मतलब यह कि दुनियाकी बनाई हुई चीजोंको काममे लाये बिना कोई आदमी अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। ऊपर केवल रोटी बनानेकी कठिनाइयाँ ही लिखी गई हैं, परन्तु उसे रोटीके सिवा और भी कई प्रकारकी वस्तुओकी आवश्यकता पड़ती है, जिनको वह दूसरोकी सहायताके बिना अपने आप नहीं बना सकता। मान लीजिए कि उसे कपड़ेकी आवश्यकता है, तो उसके लिए पहले उसे कपास बोना पड़ेगा, फिर जुलाहेका काम सीखकर कपड़ा बुनना होगा और तब दर्जीका काम सीखकर उसे सीना होगा। परन्तु सीनेके लिए पहले उसे सुई और कैंची बनानी होगी। इसी प्रकार तेलके लिए अलसी, तिली, सरसो आदिके

बीज बोने पड़ेंगे, फिर उनसे तेल निकालनेके लिए कोल्हू बनाना होगा तब कहीं तेल निकाला जा सकेगा और रातको चिराग जलाना नसीब होगा। ऐसे ही मकान बनानेके लिए भी उसे कई प्रकारकी कारीगरोंका काम सीखना होगा और अनेक वस्तुएँ जुटानी पड़ेंगीं तब कहीं मकान बन सकेगा। इससे साफ जाहिर होता है कि एक मामूली आदमीकी जरूरतका सामान भी अनेक लोगों और अनेक धन्धेवालोंकी सहायताके बिना न तो पूरा जुट ही सकता है और न उसके बिना वह अपना जीवन-निर्वाह ही कर सकता ह।

ऐसी स्थितिमें प्रत्येक मनुष्यको यह समझ लेना चाहिए और ऐसा समझना बिलकुल सही भी है कि दुनिया भरके आदमी जो जो काम कर रहे हैं वे सब काम मेरे ही भले या बुरेके वास्ते हो रहे हैं; अर्थात् दुनिया भरके आदमी जितने अच्छे अच्छे काम करेंगे उनसे मुझे फायदा पहुँचेगा और जितने बुरे बुरे काम करेंगे, उनसे नुकसान पहुँचेगा। अभी प्रत्यक्ष ही देख लीजिए कि अँगरेजों और जर्मनोंकी जो लड़ाई हमसे हजारों कोसकी दूरी पर हो रही थी उससे हम लोगोंको कितना नुकसान पहुँचा? सब चीजोंमे आग लग गई, तोपोंमें रूईका खर्च बढ़ जानेसे हमारे देशमे रूई इतनी मँहगी हो गई कि वह घीके भाव भी न मिली और इसका दुःख सबको उठाना पड़ा। इसी प्रकार अगर यूरोप, अमेरिका आदि दूर देशोंमें अनाज कम पैदा हो तो अपने देशमें चाहे कितनी ही पैदावारी क्यों न हो, परन्तु अनाज अवश्य मँहगा हो जायगा और अकालके लक्षण दिखाई देने लगेंगे। यही कारण है कि अभी जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड आदि अनेक देशोंके महायुद्धमे लिप्त रहने, तथा वहाँ सब प्रकारकी वस्तुओंका बनना और जहाजोंका आना जाना बंद हो जानेसे हम लोगोंको कई चीजें दुष्प्राप्य हो गई थीं। कहनेका अभिप्राय यह है कि अब मनुष्यका निर्वाह तभी हो सकता है

जब कि दुनिया भरके सभी आदमी पूरी कोशिशके साथ सभी जरूरतकी चीजे बनाते रहे और किसीके भी काममे कोई बाधा खड़ी न हो। क्यों कि इस समय सारी दुनियाका व्यावहारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट हो गया है कि यदि एक आदमीके काममें भी कुछ बाधा आ जाती है तो उसका फल दुनियाके सारे आदमियोंको भोगना पड़ता है।

ऐसी अवस्थामे अपनी सुखसमृद्धिके लिए प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य हो गया है कि वह संसारकी समग्र मानव जातिकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करे, संसारमे सुख-शान्ति बढ़ावे और अनेक प्रकारकी कलाकुशलता सीखकर मनुष्योके आरामकी अच्छी अच्छी चीजे निर्माण करे। इसी बातको पूर्ण करनेके लिए कई मनुष्योंने टोलियाँ बनाकर एक साथ रहना प्रारंभ किया और इस प्रकार वे एक दूसरेकी सहायता और रक्षा करने लगे। इसी प्रकार होते होते ग्राम और नगर बस गये और प्रत्येक ग्राम या नगर निवासियोने अपनेमेसे किसी एकको अधिक योग्य समझकर अपना सर्दार बना लिया। ये सर्दार आपसकी अनीति तथा अत्याचारोको रोकने लगे और हरप्रकारसे उनकी रक्षा करने लगे। उनमे किसी तरहका झगड़ा या मनमुटाव न हो इस लिए उन्होने जमीनकी सीमा निर्धारित की और मकानो, खेतो तथा अन्य सब प्रकारकी वस्तुओंके लिए भी नियम बाँध दिये। इसके सिवा कौन वस्तुपर किसका अधिकार होना चाहिए, एक मनुष्यका दूसरेपर कितना अधिकार है और वह अपने अधिकारोंको किस तरह काममें ला सकता है, स्त्रीका पुरुषके प्रति और पुरुषका स्त्रीके प्रति क्या सम्बन्ध है, इत्यादि सभी प्रकारके नियम बनाये गये और इस प्रकार मनुष्योमे परस्पर प्रेम और सहकारिताकी वृद्धि हुई।

यह सब तो हो गया, परन्तु अभी तक एक दिक्कत बनी ही रही। किसी जुलाहेको मिट्टीके बरतनकी जरूरत हुई, इसलिए वह कपड़ेका

थान लेकर कुम्हारके पास गया, परन्तु उस समय उसे कपड़ेकी जरूरत न थी। उसने कह दिया कि भाई, मुझे अनाजकी जरूरत है, आप अनाज लाकर दें तो मैं उसके बदले अपने मिट्टीके बर्तन दे सकता हूँ--कपड़ेके बदले नहीं। तब बेचारे जुलाहेको अनाजवालेके पास जाना पड़ा और उससे अनाज लाकर कुम्हारको देना पडा, तब कहीं उसे मिट्टीके बर्तन मिले। यदि उस समय अनाजवालेको भी कपड़ेकी जरूरत न होती तो जुलाहेको अपने कपड़ेके बदलेमें वह चीज अनाजवालेको लाकर देनी पड़ती, तब कहीं काम बनता। इस प्रकार प्रत्येक जरूरतको पूर्ण करनेके लिए लोगोको बहुत भटकना पड़ता था और सबको बहुत दिक्कत उठानी पडती थी। अत एव इस दिक्कतसे बचनेके लिए मनुष्योने एक ऐसी वस्तु नियत कर दी कि जिसके बदले सभी चीजे मिलने लगीं। पहले तो उन्होने यह काम अनाजसे लिया, परन्तु अनाज बहुत दिनोतक ठहर नहीं सकता है, इस कारण जिनको बहुत दिनोतक अन्य किसी वस्तुकी अवश्यकता नहीं पड़ती थी उनके पासका अनाज सड़ या घुनकर खराब हो जाया करता था। इस असुविधाके कारण उन्होने अनाजकी जगह धातुके टुकडोके द्वारा सब चीजोका विनिमय या अदलाबदला करना प्रारंभ किया। फिर इस कार्य्यमे उन्नति होते होते राजाओने अपने अपने नामके तॉबे, चॉंदी, सोने आदिके सिक्के जारी किये। इन सिक्कोके द्वारा सबको सब प्रकारकी चीजे मिलना सुलभ हो गया, इतर मनुष्योकी बनाई हुई चीजे यथेच्छ उपयोगमे लाई जाने लगी और इस प्रकार मनुष्यकी सभ्यतामे बहुत उन्नति हुई।

२ मनुष्यका मनुष्यत्व।

मनुष्य जातिका पशुजीवनसे उन्नति करते करते मनुष्यत्व प्राप्त करनेका पूर्वोक्त वर्णन मालूम हो जानेपर यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि मनुष्योको अपना मनुष्यत्व कायम रखने और आगेको उसे अधिकाधिक उन्नत करनेके लिए कौन कौनसे कर्त्तव्य पालन करने चाहिए। क्योंकि जिन सब बातोकी बदौलत मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहकी अनेक उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं, तथा जिनकी बदौलत उसका जीवन पशुजीवनसे सर्वथा भिन्न होकर अत्यन्त सुखमय तथा परम श्रेष्ठ बन गया, उन सब बातोकी रक्षा करना और उनको उन्नत बनाना मनुष्य-जीवनका मुख्य कर्त्तव्य हैं--और उनसे ही उसके मनुष्यत्वकी रक्षा हो सकती है। उक्त बातोको हम तीन श्रेणियोमे विभक्त करते है--(१) विचारशक्ति--जिसके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नति और सुखशान्तिके बढ़ानेवाले नवीन उपायोको खोजता और प्राचीन असुविधाजनक तरीकोको छोडता जाता है। (२) वचनशक्ति--जिसके द्वारा बालको तथा नवयुवकोको अपनेसे बडे तथा अनुभवी पुरुषोकी जानी बूझी हुई बाते मालूम होती रहती हैं; और आगे चलकर जब ये ही बालक तथा नवयुवक सयाने होते है या पितृपदको पाते हैं तब वे अपने पूर्वजोकी सुनी हुई और अपनी बुद्धि तथा अनुभवसे प्राप्त की हुई बातोंको अपने बच्चोंको सुनाते या सिखाते है। इस प्रकार इस बातचीत करनेकी शक्तिकी बदौलत मनुष्य उन सब लोगोकी खोजी हुई बातोको जानता रहता हैं कि जो उससे सैकड़ो-हजारो पीढ़ी पहले उत्पन्न हुए थे। नवीन लोग प्राचीन लोगोके अनुभवसे जानी हुई बातोमें अपनी बुद्धिको लड़ाकर कुछ

और आगे सरकते हैं और इस तरह उनसे भी बढ़ियाँ बाते खोज निकालते है। इसके सिवा इस वचनशक्तिकी बदौलत मनुष्य अपने समकालीन लोगोसे भी बातचीत करता है और इस प्रकार नये पुराने सभी मनुष्योके अनुभवको इकट्ठा करके वह बहुत बड़ा ज्ञानी बनता चला जाता है। यदि मनुष्यमे बातचीत करनेकी शक्ति न होती तो वह न तो उन लोगोंके ही अनुभवोको जान सकता जो उससे पहले हो गये है, और न वह अपने समकालीन मनुष्योकें अनुभवोको ही जान सकता। ऐसी अवस्थामे उसकी बुद्धिको बाहरसे कुछ भी सहायता न मिलती और वह जरा भी उन्नति न कर सकता, अपनी एक ही दशामें उसी तरह पड़ा रहता जिस तरह कि सब पशुपक्षी पड़े हुए है। परन्तु इस वचनशक्तिकी बदौलत उसे नवीन तथा प्राचीन सभी लोगोका ज्ञान-भाडार मिलता रहता है और इसी लिए वह बहुत शीघ्रताके साथ आगे बढ़ता जाता है। इसी वचनशक्तिकी बदौलत वह अपनी बनाई हुई वस्तुओंसे दूसरोकी बनाई हुई वस्तुओंका परिवर्त्तन करता, दूसरोकी रक्षा और सहायता करता तथा दूसरोसे अपनी रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरोंपर प्रकट करता तथा दूसरोके भाव आप जानता है। (३) **पारस्परिक सहायता**—अर्थात् आपसमें मिल जुलकर रहना, एक दूसरेकी चीजोसे बदला करना, एक दूसरेके धन जन और अधिकारोकी रक्षा करना और सहायता देना। अगर ये बाते न हो तो एक मनुष्य अपनी अकेली बुद्धि और वचनशक्तिसे कुछ भी नहीं कर सकेगा, बल्कि इनके बिना उसका जीवन-निर्वाह ही कठिन और रुद्ध हो जायगा।

इस प्रकार ये तीन बातें ऐसी हैं जिन्होने मनुष्यको मनुष्य बनाया है। इस लिए उसका मनुष्यत्व और परम कर्त्तव्य यही है कि वह सदैव इन तीनों बातोमे उन्नति करता रहे, उनको

सदैव उचित रीतिसे काममे लावे और उनका कभी दुरुपयोग न करे । इन शक्तियोंके दुरुपयोग अथवा बुरी तरह काममे लानेकी बात हमने—इस लिए कही है कि इनके द्वारा हानि और लाभ दोनो हो सकते है । यदि हम शक्तिका सदुपयोग करे अर्थात् उसे अच्छे काममें लगावें तो उसमे हमको लाभ होगा, और यदि हम उसका दुरुपयोग करे—उसे बुरे काममे लगावे तो उसके द्वारा हमे हानि पहुँचेगी । जैसे आगसे रोटी बनाई जावे, या लोहा, पीतल आदि गलाकर बर्तन बनाये जावें, या सोना चाँदी गलाकर जेवर या सिक्के बनाये जायँ, या एंजिन बनाकर उससे रेलगाड़ियाँ और अनेक तरहके कारखाने चलाये जायँ, तो हम कहेगे कि आगका सदुपयोग किया गया है और उससे लाभहीकी सभावना होगी; परन्तु यदि उसी आगके द्वारा लोगोके घर जलाये जायँ, बन्दूक अथवा तोपके द्वारा गोले फेंककर मनुष्योका नाश किया जाय तो यह उसका दुरुपयोग कहलावेगा और उससे हानि ही हानि होगी ।

मनुष्यको अपना मनुष्यत्व स्थिर रखनेके लिए, अपना मानवीकर्त्तव्य पालन करनेके लिए, अपनी इन तीनों शक्तियोका सदुपयोग करना चाहिए । यही नहीं, बल्कि हजारों लाखों-वर्षोंसे मिलनेवाले मनुष्योके अनुभवजन्य ज्ञान-भाण्डारका ऋण चुकानेके लिए जहाँ तक हो सके उसे स्वयं भी कुछ उन्नति करके दिखलानी चाहिए या कोई नवीन वस्तु बनानी चाहिए; पुरानी तर्कीबों, पुरानी कारीगरियो और पुरानी रीतियोंसे बढ़िया कोई नवीन तर्कीब कारीगरी या रीति निकालकर उसे सर्वसाधारणमें प्रकट करनी चाहिए । इन नई नई खोजों या तर्कीबोंको छिपाना मानों मनुष्यजातिकी उन्नतिके मार्गमें बाधा पहुँचाना है । परन्तु अपनी बुद्धिको कभी ऐसी बातोके सीखने सिखाने, या ऐसी किसी बात या तर्कीबके निकालनेमें न लगानी चाहिए जिससे मनुष्य जातिकी हानि होती हो या मनुष्यके मनुष्यत्वमें फर्क आता

हो। जिन देशोमे जब तक इस प्रकार नवीन नवीन उत्तम रीतियाँ निकलती रहीं, तब तक वे देश उन्नति करते रहे, और अन्य देशोंके सिरताज बने रहे, परन्तु जब उन्होने इस प्रकार आगेको सरकना छोड़ दिया, और पुरानी रीतियोंको पकड़कर बैठ रहे, तब वे अन्य उन्नतिशील देशोंके अधीन बन गये। अर्थात् जो लोग पुरानी कमाईके भरोसे न बैठकर नई नई बातोंकी खोज करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं, संसारमे उन्हींकी तूती बोलती है।

मनुष्य अपनी वचनशक्तिकी बदौलत ही यह सब उन्नति करनेमें समर्थ हुआ है और आगेको करता जाता है, अतएव उसे उचित है कि वह इस शक्तिका उपयोग सदैव मनुष्यमात्रके लाभकारी कामोंमे ही करे। मनुष्योने अपने विचार दूसरो पर प्रकट करनेके लिए एक और तर्कीब निकाली है और वह तर्कीब लिखनेकी है। इससे भी वे उसी प्रकार काम लेने लगे हैं जिस प्रकार कि मुंहके द्वारा बोलकर। बल्कि इस लिखनेकी तर्कीबके द्वारा वचनशक्तिकी अपेक्षा अधिक उन्नति हुई; क्योकि मुहके द्वारा हम अपने मनके विचार उन्हीं लोगों पर प्रकट कर सकते थे जो हमारे पास होते थे, परन्तु लिखनेकी तर्कीबसे हम अपनी बाते हजारो—लाखो मीलोकी दूरी पर भी पहुँचाने लगे। इस लेखनकलाकी बदौलत एक और भारी लाभ यह हुआ कि हमारे लिखित अनुभवो तथा समस्त ज्ञानका लाभ हमसे बहुत पीछे पैदा होनेवाले लोगोको भी होने लगा। इस लेखन-कलाकी विधिको और भी उन्नत बनानेके लिए लोगोने छापनेकी तर्कीब निकाली कि जिसके द्वारा धड़ाधड लाखो करोड़ो पुस्तके छपने लगीं। इस प्रकार बहुत थोड़े श्रमसे बड़े बड़े विद्वानोके विचार सबको विदित होने लगे। इसके सिवा तार, टेलीफोन, बिना तारका तार, आदि अनेक प्रकारकी तर्कीबें निकाली गईं और मनुष्यबुद्धिकी गंभीर खोजसे और भी निकलती चली जा रही हैं। कहनेका मतलब यह है कि अपनी

बात दूसरों तक पहुँचानेकी कलामे जितनी उन्नति की जायगी मनुष्योकी भी उतनी ही उन्नति होगी। अतएव मनुष्यको नये पुराने और सुदूरवर्ती लोगोके विचारोको जाननेके लिए सब प्रकारकी पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अपने विचारों तथा अनुभवोंको लिखकर सर्व साधारणमें प्रकट करना चाहिए। ऐसा करनेसे ही वह अपनी तथा अपनी भविष्यत्मे होनेवाली संतानकी भलाई कर सकता है।

परन्तु मनुष्यको नवीन चीजें बनाने, नवीन तर्कोंवे सोचने और वचनशक्तिको काममें लानेके लिए वड़ी सावधानीकी जरूरत है। क्योकि जो शक्ति जितनी अधिक बलवान् होती है और जितना अधिक लाभ पहुँचाती है, वह विपरीत हो जाने या उल्टी रीतिसे काममें लाई जाने पर उतना ही अधिक नुकसान भी पहुँचाती है। उदाहरणार्थ—हाँकनेवालोकी असावधानीसे यदि दो वैल गाडियाँ आपसमे लड़ जावे तो उसमे वैठे हुए दो चार मुसाफिरोको ही चोट आयगी और यह चोट भी सांघातिक नहीं, साधारण ही होगी। परंतु यदि ड्राइवरकी असावधानीसे दो रेलगाड़ियाँ आपसमें लड़ जायँ तो सैकड़ों—हजारो आदमियोको मौत हो जायगी; उनकी हड्डियो-पसलियों तकका पता न चलेगा। इसी प्रकार नवीन आविष्कार और वातचीत करनेकी शक्तियाँ भी ऐसी ही महान् शक्तियाँ हैं कि जिन्होने मनुष्यके रहन-सहन और जीवन-निर्वाहका एक विलकुल विलक्षण और अद्भुत ढाँचा खड़ा कर दिया हैं और भविष्यतमे भी जिनकी वदौलत मनुष्य अपने जीवन-निर्वाहका नयेसे नया नकशा वनाता जाता है। अतएव इन शक्तियोंको बहुत सावधानीके साथ उपयोगमें लानेकी आवश्यकता है, नहीं तो यही शक्तियाँ मनुष्यका सर्वनाश करनेकी ताकत भी रखती हैं। जो लोग इनका दुरुपयोग करते हैं उनका विषमय फल भी तत्काल ही पालेते हैं।

इस विषयमें सबसे भारी कठिनाईकी बात यह है कि मनुष्यम नवीन नवीन बाते निकालनेकी बुद्धि और विवेकशक्तिके होते हुए भी उसके हृदयमे पशुओके समान क्रोध,मान,माया लोभका आवेग भी भरा हुआ है कि जिसके बढ़ जाने या भड़क उठनेसे वह अपनी विवेक बुद्धि-को त्यागकर आपेसे बाहर हो जाता है, और जान बूझकर ऐसे काम करनेके लिए उद्यत हो जाता है कि जिनसे उसकी प्रत्यक्ष हानि होती है। बहुधा क्रोधसे भरे हुए लोगोके मुँहसे ऐसा कहते हुए सुना जाता है, कि चाहे मेरा घर मिट्टीमे क्यो न मिल जाय, परन्तु मै अपने बैरीको खाकमें मिलाकर ही छोड़ूँगा, चाहे मेरी फाँसी क्यो न लग जाय परन्तु मैं अमुक आदमी की एकबार भरे बाजार इज्जत बिगाड़े बिना न रहूँगा। इस प्रकार क्रोधमें आकर मनुष्य न जाने क्या क्या कहता है और केवल कहता ही नहीं, कभी कभी कर भी बैठता है कि जिसका पीछे उसे बहुत पछतावा होता है। इसी प्रकार अपनी इज्जतके खयालमे इस देशके लोग अपने लडके लडकियोके विवाहमे अपना सर्वस्व लुटाकर भिखारी बन जाते है और अपनी प्रिय संतानोके सिरपर ऋणका इतना भारी बोझा छोड़ जाते है कि वे फिर अपनी उमर भर सिर नहीं उठा पाते है और न किसी मानके योग्य ही रह जाते हैं। ऐसे ही लोभ और मायाके वशीभूत होकर भी लोग ऐसा ही काम कर बैठते है कि जिससे उनकी बनी बनाई साख या इज्जत बिगड़ जाती है, और कभी कभी तो उनका सब कारोबार बंद हो जाता है और उन्हे जैलखानेकी हवा तक खानी पड़ती है।

मतलब यह है कि क्रोध, मान, माया लोभ, आदि मनके उफान ऐसे प्रबल हैं जो असावधान मनुष्यको बिलकुल बेकाबू कर देते हैं और उससे विपरीत काम कराने लगते हैं। जैसे आँखोपर हरे रंगका चश्मा लगानेसे सब वस्तुएँ हरी हरी दिखाई देने लगती हैं और पीले रंगका चश्मा लगानेसे सब तरफ पीला ही पीला दिखाई देने लगता

है, उसी प्रकार क्रोध, मान, माया लोभ, आदि कषायोंके जोशसे भी मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और कर्त्तव्योको त्यागकर वह अपनी बुद्धिको उन कामोकी ओर झुका देता है कि जिससे उसके मनकी भड़क पूरी होती है। कभी कभी तो वह अपने मनकी भड़कको पूरी करनेमे इतना बेसुध और उन्मत्त हो जाता है कि चाहे उसके तमाम काम बिगड़ जावे--चाहे सारी दुनिया रसातलको चली जाय, परन्तु उसकी वह भड़क पूरी होनी ही चाहिए। इसी लिए असावधान और कषायी मनुष्य अपनी अनेक प्रकारकी प्रबल इच्छाओ और हृदयकी उमंगोको पूर्ण करनेके लिए उपरिलिखित महान् महान् शक्तियोंको भी इसी ओर लगा देता है और झूठ, फरेब, धोखेवाजी, जालसाजी, मक्कारी आदि बुरे मार्गोंमे ही अपनी उक्त शक्तियोको व्यय करने लगता है। परिणाम यह होता है कि वह सारे संसारके लोगोसे मेल-जोल रखने, उनके जान मालकी रक्षा करने और सुख-शान्ति वढ़ानेके बदले उनको नुकसान पहुँचाने, उनका हक छीनने, माल उड़ाने, चोरी डकैती करने और पराई स्त्रियोंकी ओर कुदृष्टिसे देखने आदि बुरे बुरे कामोमे फँस जाता है और इन कामोमे सफलता प्राप्त करनेमे वह अपना परम सौभाग्य और कर्तव्य समझने लगता है। परन्तु ऐसा करनेसे वह मनुष्यत्वके ढाँचेमे बड़ी भारी खलबली पैदा कर देता है और पारस्परिक विश्वासको खोकर आपसमें मिल-जुलकर रहनेके अत्युत्तम प्रबंधको शिथिल बनाता है। ऐसे ऐसे विपरीत कामोंसे मनुष्य समाज अपने पदसे भ्रष्ट होकर केवल नीचेहीको नहीं आता, किन्तु वह पतित होकर नष्ट हो जाता है और किसी योग्य भी नहीं रहता।

पशुओंमे वाचाशक्ति न होनेसे वे आपसमें न तो झूठ ही बोल सकते हैं और न ऐसा भारी धोखा ही दे सकते है जैसा कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको दे सकता है। इसी प्रकार पशुओंके पास

अपने शरीरके सिवा अन्य कोई साधन भी नहीं हैं, जिससे वे अन्य पशुओंको भारी नुकसान नहीं पहुँचा सकते हैं। परन्तु मनुष्योंने दूसरोंको मारने या हानि पहुँचानेके लिए तीर-कमान, तलवार, बंदूक, तोप आदि अनेक ऐसे साधन बना लिये हैं कि जिससे वे भारी विध्वंस मचा सकते है, और कषायोंके भड़कनेपर बहुधा ऐसा करते भी है। इस प्रकार नवीन नवीन उपायोंके निकालनेकी बुद्धि और वाचा शक्तिके दुरुपयोगसे मनुष्यका मनुष्यत्व दूर होकर वह पशुसे भी गया बीता बन जाता है, और अनन्त दुःखोमें फँसकर कहींका भी नहीं रहता है।

पशुगण अपना जीवन पृथक् पृथक् ही व्यतीत करते हैं। वे अपने जीवन-निर्वाहके लिए न तो आप ही कुछ काम करते हैं और न दूसरोंसे ही कुछ सहायता लेते है, बल्कि प्रकृतिके द्वारा जो कुछ संसारमे उत्पन्न होता है उसी पर अपना निर्वाह या गुजारा करते रहते है। परन्तु मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहके लिए ऐसी कई वस्तुओंकी जरूरत पड़ती है कि जिनको अनेक मनुष्य बनाते हैं। छोटेसे छोटे और बिलकुल सादे ढँगसे जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्यकी जरूरते भी ऐसी नहीं हैं कि जो दो चार या दश बीस मनुष्योकी बनाई हुई चीजोसे पूरी हो सके बल्कि छोटेसे छोटे और मामूली आदमीकी जरूरते भी दुनिया भरके सभी मनुष्योके कामसे पूरी होती हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्यका दुनिया भरके सब मनुष्यो और उनके कामोसे ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध हो रहा है कि अन्य मनुष्योंके कामोमे गड़बड़ी पड़नेसे इसके काममे भी गड़बड़ी पड़ जाती है और उसके सुख तथा सुभीतोको धक्का पहुँचता है। इस लिए प्रत्येक मनुष्यको स्वय सावधान रहने और दुनिया भरके लोगोंको सावधान रखनेकी जरूरत है कि जिससे कोई मनुष्य किसी प्रकारकी गड़बड़ी या अशान्ति पैदा न करे और आपसमें प्रेमपूर्वक रहनेका जो प्रबन्ध

मनुष्यजातिने कर लिया है वह विना किसी विघ्न वाधाके ठीक ठीक चलता जावे। परन्तु यह तभी हो सकता है जब सब लोग, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोंको अपने काबूमें कर ले और उन्हें इतना न बढ़ने दे कि जिससे उनको आपसमे प्रेम और सलूकको तोड़कर किसी मनुष्यको दुःख देने, नुकसान पहुँचाने या उसके हक मारनेमें प्रवृत्त होना पड़े, या इन क्रोधादिक मनके आवेगोकी सिद्धिके लिए मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट वृत्ति अर्थात् आपसमे बातचीत करनेकी परम पवित्र और श्रेष्ठ शक्तिको झूठ, फरेब, धोखेबाजी आदि अत्यन्त नीच कामोके लिए व्यवहारमे लाना पड़े।

परन्तु ऐसा होनेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य ससारके सभी मनुष्योको अपने शरीरका अग समझे, और ऐसा विश्वास रक्खे कि जिस प्रकार शरीरके किसी अगमें चोट लग जानेसे, या उसमे किसी प्रकारकी पीड़ा होनेसे सारे शरीरको बेचैनी सहनी पड़ती है, उसी प्रकार दुनियाके किसी मनुष्यको दुःख पहुँ-चनेसे भी मनुष्यमात्रको नुकसान पहुँचता है और मनुष्य जातिके हितमे धक्का लगता है। इस लिए परलोक सुधारनेवाले धर्मोमे भलाई और बुराईका कैसा ही लक्षण क्यो न बतलाया गया हो और अपना परलोक सुधारनेके लिए मनुष्य उनका कैसा ही लक्षण क्यो न मानता हो, परन्तु मनुष्यको अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करनेके लिए भलाई और बुराईका यही लक्षण मानना उचित है कि जिस बातसे मनुष्यजातिको लाभ होता हो और मनुष्योके आपसके प्रेम और सलूकका ढाँचा मजबूत होता हो—वह भलाई है, और जिस बातसे उक्त ढाँचा बिगड़ता हो वह बुराई है।

इस स्थान पर हम भलाई और बुराईके लिए पुण्य और पाप इन शब्दोंको काममें लाना नहीं चाहते हैं, क्योकि ये परलोक सुधा-

रनेवाले धर्म्मोंके शब्द हैं; जिनके लक्षणोंमे खेचातानी करके दुनियाँके लोग धर्म्मके नामपर गर्दने कटवाते है तथा दूसरोंकी गर्दने काटकर खूनकी नदियॉ वहाते हैं और इस प्रकार धर्म्मके नामको बदनाम करते है। मनुष्यके जीवन-निर्वाहके लिए तो भलाई और बुराई अथवा नेकी और वदी ये साधारण शब्द ही काफी है, क्योंकि उपरिलिखित लक्षणोके अनुसार भलाई करता हुआ और बुराईसे बचता हुआ प्रत्येक मनुष्य इस दुनियाको ही स्वर्गधाम बना सकता है और सब तरफ आनन्द ही आनन्द फैला सकता है। ऐसे ही इसके विपरीत आचरण करके वह इस दुनियाको नरककुंड बना सकता है, और चारो ओरसे 'त्राहि त्राहि' की पुकार मचवा सकता है। सच तो यह है कि ऊपर लिखे अनुसार जीवन विताये विना अर्थात् भलाई करने और बुराईसे बचे विना यह मनुष्य अपने आपको मनुष्य ही नहीं कह सकता है, बल्कि ऐसी दशामे वह पशुओंसे भी नीचे गिरा हुआ है और मनुष्य जातिके लिए वह शेर, भेड़िया. साँप, बिच्छू आदिसे भी अधिक दुखदाई है। अतएव मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य बननेकी कोशिश करनी चाहिए और हरवक्त उसके लिए सावधानी रखनी चाहिए।

हमारी समझके अनुसार इसके लिए मनुष्यको निम्न लिखित पॉच नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिए। क्योकि ये नियम उसके मनुष्य बनने और मनुष्यत्व प्राप्त करनेके प्राथमिक नियम हैं। १—मनुष्यमात्रसे प्रीति रखना और सब मनुष्योको अपना कुटुम्बी या शरीरका अंग समझकर उनकी भलाई करना। इसीको दूसरे शब्दोंमें परोपकार भी कह सकते हैं। २—झूठ, फरेब, छल-कपट आदि बुरे कामोमें अपनी परम पवित्र वाचाशक्तिको भ्रष्ट न करके सदैव सीधी, सच्ची और दूसरोंके हितकी बात कहना अर्थात् सत्य बोलना। ३—चोरी या जबरदस्ती आदिके द्वारा न तो किसीका माल उड़ाना और न किसी-

का हक छीनना, अर्थात् अपने ही धन, असबाब और अधिकारोंपर संतोष रखना । ४-अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीसे कामचेष्टा न करना, अर्थात् शील पालना और ५-अपने अधिकारों और अपनी वस्तुओंपर ऐसा विह्वल न होना कि जिससे स्वार्थके वशीभूत होकर सार्वजनिक प्रेम, सहायता और सहानुभूतिके सुनहले नियमको तोड़ना पड़े या परोपकार बुद्धिको त्यागना पड़े । इसे थोड़ेसे शब्दोंमे 'अपरिग्रही वृत्ति' कह सकते हैं । ये पॉच स्थूल नियम ऐसे हैं कि जिनके विना मनुष्यके मनुष्यपनका ढॉचा ही नहीं वन सकता है । इसकारण ये प्राथमिक नियम तो सभी मनुष्योको सबसे पहले पालन करने चाहिए । इन नियमोका पालन करके मनुष्य मनुष्यत्व प्राप्त करता और संसारमे सुख भोगता है, यही नहीं वल्कि वह अपने परलोक सुधारनेके योग्य भी वन जाता है । यही कारण है कि आजकल हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वौद्ध, जैन आदि जितने पारलौकिक धर्म प्रचलित हैं उन सबने दया पालने, सत्य वोलने, चोरी न करने, शील रखने और परिग्रह कम करने अर्थात् संसारकी वस्तुओमें अधिक आसक्त न होनेको ही सबसे आवश्यकीय नियम ठहराया है और इनके विषयमें यहॉतक जोर दिया है कि इन नियमोका पालन किये विना मनुष्यका पूजा-पाठ, जप-तप, व्रत-उपवास, दान और त्याग करना निरर्थक और ढोंग हैं । जो मनुष्य उक्त नियमोंका पालन नहीं करता उसकी प्रार्थना, स्तुति, पूजापाठ और चढ़ावेसे किसी भी धर्मका देवता प्रसन्न नहीं होता है और न वह कोई पुण्य ही सम्पादन कर सकता है । अत एव प्रचलित धर्म्मोंके सिद्धान्तके अनुसार भी मनुष्यको सबसे पहले मनुष्य वननेकी आवश्यकता है और वह तभी मनुष्य बन सकता है जब कि संसारके सब मनुष्योकी भलाईकी कोशिश करे, सच वोले, किसीका अधिकार न छीने, शील पाले और अपनी वस्तुओंके मोहमे वेसुध या आसक्त न हो जाय ।

यदि सभी धर्म्मोंके मनुष्य अपने अपने धर्मके अनुसार इन पाँचों नियमोका पालन करना आवश्यक समझ लें, अर्थात् अपने अपने धर्मके अनुसार मनुष्य बननेकी कोशिश करने लगें तो फिर संसारमें कोई भी झगड़ा बाकी न रहे, चारो ओर सुख-शान्ति फैल जावे और सर्वत्र आनंद ही आनंद दृष्टिगोचर होने लगे। फिर वे उपद्रव भी मिट जावे जो प्रतिदिन धर्मके नामसे होते रहते है और जिनके कारण मनुष्य जातिमे बड़ी अशान्ति या वदसल्की फैली रहती है। इसके सिवा उन सव धर्म्मोंकी—जो परम पिता परमेश्वरके चलाये हुए बतलाये जाते हैं—वदनामी तभी दूर हो सकती है जब इन पाँचो नियमोंके पालन किये विना किसी मनुष्यको यह अधिकार न हो कि वह अपनेको किसी धर्म्मका अनुयायी बतला सके। क्यों कि इन नियमोके पालन किये विना मनुष्यमें मनुष्यत्व नहीं आता है और विना मनुष्यत्व प्राप्त किये कोई किसी धर्मका धारण करनेवाला भी नहीं हो सकता है। परन्तु इन नियमोका पालन होना तभी सम्भव है जब क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायोको सीमासे बाहर न बढ़ने दिया जाय, अर्थात् उनके वशमें न हो जाय, बल्कि उन्हींको अपने काबूमे रक्खे और उनसे अपनी इच्छानुसार काम ले। अतएव मनुष्यका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वह अपने क्रोध आदि कषायोंको इस प्रकार काबूमें कर लेवे जैसे कि गाड़ीमे जोतनेके पहले घोड़े वशमें कर लिये जाते हैं। परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपने विचारोंकी पूरी पूरी जाँच अर्थात् देखरेख रक्खे और मनको बुरी वासनाओंकी ओर दौड़नेसे रोकता रहे।

३– मनको अपने अधीन रखना चाहिए।

मनुष्य किसी वस्तुसे तो प्रीति करता है और किसीसे द्वेष, अर्थात् किसी चीजकी ख्वाहिश करता है और किसीसे नफरत। जैसे वह खट्टी और मीठी चीजे तो खाना चाहता है परन्तु कड़वी और कसैली चीजोंसे नाक सिकोड़ता है, सुगन्धके पास जाता है और दुर्गन्धसे दूर भागता है। मनुष्यके सब प्रकारके काम, सब तरहके उद्यम, श्रम, तदवीरे, आदि सब इसी इच्छा और द्वेषके ही कारण हुआ करते है। परन्तु जो यह बात निश्चित होती कि मनुष्यजाति अमुक वस्तुको चाहती है और अमुक वस्तुसे दूर भागती है तो बहुत सुविधा रहती, क्योकि ऐसी दशामे संसारके सभी मनुष्य सदैव उन चीजोको बनाने, संग्रह करने और उनकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया करतें जो मनुष्यजातिको पसंद होती, और उन सब चीजोंको नष्ट कर डालते जो उसके नापसंद होतीं। परंतु यहाँ तो संसारकी समस्त वस्तुओंमेसे कोई मनुष्य किसीकी चाह करता है और कोई किसीकी, अर्थात् एक मनुष्य जिस चीजकी चाह करता है दूसरा उसीसे घृणा करता है। इसी कारण ससारकी सभी चीजे मनुष्योकी चाहकी चीजे बन रही है और सभी नफरतकीं। देखिए, मैला एक ऐसी चीज है कि जिससे सभी लोग अत्यन्त घृणा करते है, परंतु किसान लोग उसे बहुत उपयोगी समझते है और उसे दाम देकर खरीदते हैं।

यदि यही होता कि एक आदमी सदैव एक ही प्रकारकी चीजोंको पसंद करता और दूसरी प्रकारकी चीज़ोंसे नफ़रत करता, तो भी गनीमत थी, क्यो कि ऐसी दशामे प्रत्येक मनुष्यकी कोशिशे सदैव एक ही प्रकारकी रहतीं। परन्तु ऐसा भी नहीं होता है। एक ही

मनुष्य कभी किसी चीजकी इच्छा करता है और कभी किसीकी। पहले जिसकी इच्छा करता है पीछे उसीसे घृणा करने लगता है और पहले जिससे घृणा करता था पीछे उसीकी इच्छा करने लगता है। जैसे कि जिस मनुष्यके शरीरमें कफकी ज्यादती हो जाती है उसको मिठाई खानेकी बहुत इच्छा होती है और खटाईकी तरफसे मन हट जाता है, परन्तु जब उसका पित्त बढ़ता है तब वही मनुष्य खटाई खानेकी इच्छा करता है और मिठाईसे नफरत करने लगता है। इसी प्रकार यह भी नित्य देखनेमे आता है कि यह मनुष्य जिससे प्रथम बहुत प्रीति रखता था, जिसको देखकर उसकी कली कली खिल जाती थी और जिसे एक घड़ीके लिए भी अपने पाससे जुदा नहीं करना चाहता था उसीसे अगर किसी बातमे नाराज हो जाय तो फिर वह उसकी सूरत देखना भी पसद नहीं करता है, बल्कि कभी कभी तो वह उसके खूनका प्यासा हो जाता है। गरीबीमे यह मनुष्य जिन चीज़ोंके लिए तड़फता था, अमीरी आ जाने पर उन्हीं वस्तुओंको देख कर नाक भौं सिकोड़ने लगता है और उन्हें क्षणभर भी अपने सामने नही ठहरने देता। जाड़ेमे वह रूई और ऊनके जिन मोटे मोटे कपड़ोंमे लिपटता था, जिन आगकी अँगीठियों पर तापता था, गरमीमे उन्हींसे घबड़ाता है, और गरमीमे जिन शीतल स्थानोंको चाहता था जाड़ेमे उन्हींसे दूर भागता है। गरज यह कि मनुष्यकी इच्छायें और जरूरते भी सदैव स्थिर नहीं रहती है, बल्कि वे क्षण क्षणमे बदलती रहती हैं और मनुष्यसे तरह तरहके नाच नचाती रहती हैं।

मनुष्यकी ये इच्छायें जब प्रबल हो जाती है तब वे मनुष्य पर अपना ऐसा प्रभाव जमाती हैं कि वह अपनी हानि लाभको भूल जाता है और इनके फदेमें फँसकर अपने आप ही अपना नुकसान करने लग जाता है। जैसे कि, बहुधा देखनेमे आता है कि यह निश्चय हो जाने परभी कि

अमुक वस्तु खानेसे नुकसान पहुँचाती है, वहुतेरे लोग अपनी जीभके स्वादके वशीभूत होकर उस चीजको खा जाते हैं और बीमार पड़ जाते हैं, परन्तु फिर भी वे बाज़ नहीं आते हैं और बीमारीकी हालतमे भी उसे खाते जाते हैं और अपनी बीमारीको बढ़ाते रहते है। इसी-प्रकारके ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं कि जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओके वशीभूत होकर ऐसे काम करता है कि जिनसे उसको वहुत हानि पहुँचती है।

ऐसी अवस्थामें मनुष्यका यह आवश्यक और मुख्य कर्तव्य है कि वह खूब सावधान रहे और अपनी इच्छाओको ऐसा प्रबल न होने दे कि जिससे वे उसपर अपना प्रभुत्व करने लगे और उससे जिस तरह चाहें नाच नचावे; बल्कि मनुष्यको ही उनपर अपना आधिपत्य रखना चाहिए, अर्थात् अपनी विचारशक्तिके अनुसार हानिकारक इच्छाओ तथा प्रवृत्तियोंको सदैव दबाते रहना चाहिए।

इसी प्रकार यदि उसकी चाह या इच्छाशक्ति किसी ऐसी चीजसे नफरत रखती हो जो वास्तवमे लाभकारी है तो उसको उचित है कि वह अपनी नफरतको दबावे और उस वस्तुको काममें लावे। मान लो कोई कड़वी दवा किसी बीमारको बतलाई गई परन्तु उसके खानेको उसका जी नहीं चाहता है, तो उसको उचित है कि वह अपने जीको दबावे और उस दवाको खावे। इसी प्रकार यदि बालकोके साथ खेलमें लगकर किसी विद्यार्थीका मन पाठशाला जानेको नहीं चाहती है तो उसे उचित है कि वह कभी अपने मनकी आज्ञा न माने और खेल छोड़कर तुरंत पाठशालाको चला जाय। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंके विषयमे भी समझ लेना चाहिए। क्योंकि इच्छा और द्वेषका उफान सदैव मनुष्यके मनमे उठता रहता है और वह सदैव उसकी विचारशक्तिको दबाता रहता है। इसलिए मनुष्यको सदैव उससे सावधान रहना चाहिए और अपनी विचारशक्तिको प्रबल रखकर

सदैव उसीके अनुसार कार्य्य करना चाहिए। कभी भूलकर भी इच्छा और द्वेपके फंदेमे न आना चाहिए, बल्कि अपनी इच्छा द्वेप अर्थात् चाह-अचाहको ही अपने लाभ हानिके अनुसार बनाना चाहिए। यदि मनुष्य इस प्रकार सावधानीसे काम ले, तो वह अनेक आपत्तियोसे बच जाय और सुख-शान्तिसे अपना जीवन बितावे।

हम पहले ही कह आये है कि पशुपक्षी तो सब कार्य्य अपनी प्रकृतिके ही अनुसार करते हैं-वे उसमे कुछ भी घटा बढ़ा या न्यूनाधिकता नहीं कर सकते। परंतु मनुष्यमें विचारशक्ति है कि जिसके द्वारा वह अपनी सुख-शान्ति बढ़ानेके नये नये उपाय निकालता है और अपनी प्रकृतिको दबाकर उनके अनुसार कार्य्य करता है। इस प्रकार वह उन्नतिपर उन्नति करता जाता है। ऐसा करनेसे ही वह पशुओसे उत्तम हो सका है और अनेक प्रकारकी आपत्तियोंसे बचकर अपनी सुखशान्तिकी वृद्धि करनेमे समर्थ हुआ है। यह शुभ परिणाम अपनी हानि लाभका ख्याल रखने और अपनी विचारशक्तिसे काम लेनेके कारण ही हुआ है। परन्तु खेदकी बात है कि अनेक मनुष्य अपनी प्रकृतिको दबाने या बदल डालनेमें बहुत लापरवाही करते है जिसके उनकी प्रकृति बहुत विगड़ जाती है और उनकी बासनाये बहुत प्रबल हो जाती हैं। वे उनको कठपुतलीकी तरह नचातीं और भले बुरे सब तरहके काम कराती हैं। इस तरह मनुष्य वासनाओके वशीभूत होकर पशुश्रेणीसे भी नीचे गिर जाता है, और वह वास्तवमे अपनी वासनाओके समक्ष काठकी पुतली ही बन जाता है।

देखिए, पशु अपनी प्रकृतिके अनुसार किसी खास ऋतुमे ही कामवासनाकी तृप्ति करते हैं, और इसी लिए उनका वीर्य्यबल इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि एकबारके काम-सेवनसे ही गर्भ रह जाता है; परन्तु मनुष्यने अपनी प्रकृतिको एसा विगाड़ रक्खा है कि वह बारहों

महीने काम सेवन करता रहता है, और इस प्रकार वह अपनी हानि करनेसे जरा भी नहीं हिचकता है । अधिक काम-सेवनसे जो भयंकर हानियॉ होती हैं वे किसीसे छिपी नहीं हैं । इसके अतिरिक्त मनुष्योमे पशुओकी अपेक्षा वल बहुत कम रहता है, इस लिए उसे पशुओकी अपेक्षा अधिक संयमसे रहनेकी आवश्यकता है और प्रकृति भी यही कहती है, परंतु मनुष्यने अपने बुद्धिबलसे अनेक ओषधियॉ, पुष्टिकारक भोजन और कई प्रकारकी ऐसी तदबीरे निकाली है कि जिनके कारण उसे नित्य ही उक्त वासना वनी रहती है । इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य बहुत निर्बल हो गया है और दिन पर दिन निर्बल होता जाता है । जितना जितना वह निर्बल होता जाता है उसकी इच्छाये भी उतनी ही उतनी प्रबल होती जाती हैं और उसको हरवक्त अपनी लालसाओको पूर्ण करनेमे फँसाये रहती हैं । इन वासनाओकी उत्तेजनाके कारण उसकी विचारशक्ति ऐसी शिथिल हो जाती है कि उसे अपनी कमजोरीका ख्याल भी नहीं आता है । वह इस कामसे उस समय तक बाज नहीं आता है जब तक उसकी शारीरिक शक्तियाँ उसे साफ जवाब नहीं दे देती है और वह चारपाईपर नहीं पड़ जाता है । ऐसी हालतमे भी वह अपने पूर्व बलको पुनः प्राप्त करने और इच्छाओको दबानेकी कोशिश नहीं करता है, बल्कि बीमारीकी हालतमे भी अपनी इच्छानुसार ही वर्ताव करता है । ओपधियोके प्रभावसे ज्यो ही वह उठने बैठनेके योग्य हो जाता है त्यो ही वह अपनेको पूर्ण स्वस्थ समझ लेता है और शीघ्र ही फिर उसी काम-वासनामें लग जाता है । यह देखकर कहना पड़ता है कि इस समय मनुष्यकी दशा ठीक कराये पर चलनेवाले इक्के या शिकरमके घोड़ोंकीसी हो रही है, जो सदैव बिलकुल दुर्बल बने रहते हैं, परन्तु नित्य बीसो मील दौड़ते रहते हैं और शीघ्र ही मर जाते हैं ।

इस विषयमें दूसरा दृष्टान्त यह दिया जा सकता है कि खाना खाने पर जब मनुष्यका पेट भर जाता है तब उसका चित्त उससे हट जाता है, और इतने पर भी वह उसे जबरदस्ती पेटमें ठूंसना चाहता है तो उसे उबकाई आने लगती है और कभी कभी तो कै भी हो जाती है। गोदके बच्चोंको तो अक्सर ऐसा हुआ करता है। जब उनकी माँ उनको अधिक दूध पिला देती है तो वे उसे तुरंत ही उगल देते हैं और अपना पेट हलका कर लेते हैं। इस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति स्वतः बहुत सावधानी रखती और होशयारीसे काम लेती है। पेट भर जाने पर वह तुरत ही सूचना देती है कि अब पेटमें गुंजायशी नहीं है, परन्तु इतने पर भी जब कोई खाता ही जाता है तो वह उसे निकालकर बाहर फेंक देती है। इसी प्रकार अगर किसी कारणसे पहला खाया हुआ भोजन हजम न हो पाया हो और दुबारा खानेका समय आ जाय तो उस समय भी उसे रुचि नहीं रहती है, मानों प्रकृति कहती है कि अभी पेटमें दुबारा खानेको जगह नहीं हुई है। ऐसे ही जब किसी कारणसे पाचनशक्ति बिगड़ जाती है तो फिर कई दिनतक भूख नहीं लगती है। इस प्रकार हर समय मनुष्यकी प्रकृति उसको सावधान करती रहती है, और मानो वह रेलके उस बाबूका काम देती है जिससे लाइन क्लियर मिले बिना—सफेद झंडी दिखाये बिना रेल नहीं चलती है—वहीं पर ठहरी रहती है।

परन्तु शोककी बात है कि मनुष्य अपनी प्रकृतिकी इस रोक या मनाही पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है और उसके सुप्रबन्धको तोड़नेके लिए अनेक प्रकारके सुस्वादु भोजन बनाता है, उसके साथ ऐसी खट्टी मीठी चटनियाँ लगाता है कि प्रकृति भी अपना काम भूल जाती है और जीभका स्वाद लेनेमें लग जाती है। इस प्रकार मनुष्य रिश्वत देकर या फुसलाकर प्रकृतिको अपना काम करनेसे रोकता है और जगह न होने पर भी पेटमें बहुतसा भोजन ठूंस देता है।

इसका परिणाम यह होता है कि उसका बहुतसा हिस्सा बिना पचे ही निकल जाता है और वह शरीरके ढॉचेको बिगाड़ कर अनेक रोग पैदा करता है।

काम-सेवन और भोजन इन दो दृष्टान्तोसे पाठकोको यह बात भली भाँति समझमें आ गई होगी कि मनुष्यने अपनी इच्छाओके दबाने और बदलनेकी महान् शक्तिका दुरुपयोग करके अपनी प्रकृतिके उत्तम रूपको सँभालनेके बदले उसे बिगाड डाला है, जिसके कारण वह अनेक बड़ी बड़ी विपत्तियोमे फॅसकर पशुओसे भी गया बीता बन गया है। विचारनेकी बात है कि छोटा बडा, निर्बल, सबल, कोई भी ऐसा पशुपक्षी नहीं है कि जो प्रकृतिविरुद्ध कामक्रीड़ा करता हो, अर्थात् हस्त-मैथुन गुदा-मैथुन आदिके द्वारा अपनी कामाग्निको बुझाता हो। परन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्योमे ये सब दोष उत्पन्न हो गये है, और स्त्री-पुरुष दोनो ही इन दोपोके अपराधी है। इसका कारण यही है कि पशुओको अपनी प्रकृतिके विरुद्ध न तो कोई बात सूझती है और न वे अपनी प्रकृतिके विरुद्ध कोई काम कर ही सकते हैं। परन्तु मनुष्य विचारशक्ति रखता है जिसके द्वारा वह प्रत्येक विपयमे नई नई बाते सोच सकता है और तदनुसार कार्य्य करके अपनी प्रकृतिको बदल भी सकता है। इस लिए जब वह असावधान होकर अपनी विचारशक्तिकी बागडोरको ढीली छोड़ देता है और अपनी हानिलाभके विचारको भूलकर अपनी इच्छाओके वशमे हो जाता है तथा उनके इशारे पर नाचने लगता है, तब वह अपनी प्रकृतिको ऐसे विपरीत रूपमे भी बदल डालता है कि जिससे उसकी अपरिमित हानि होती है और वह अत्यन्त नीच और पतित बन जाता है।

इस कथनसे हमारा यह मतलब नहीं है कि पशु पक्षियोकी नाईं मनुष्य भी अपनी प्रकृतिके ही अधीन रहे और अपनी विचारशक्तिके

द्वारा उसमें कुछ भी सुधार या फेरफार न करे, बल्कि हम भी यही कहते हैं कि उसे पशुओंकी नाईं सदैव एक लकीर पर न चलना चाहिए, प्रत्युत हर समय अपनी विचारशक्तिसे काम लेकर—जिस समय जैसी जरूरत हो—अपने प्रत्येक काममे नवीनता और रद्दोबदल करते रहना चाहिए और अपनी बुद्धिको बढ़ाना चाहिए, परन्तु असावधान होकर अपनी इच्छाओंको ऐसे उद्धत रूपमे प्रवृत्त न होने देना चाहिए, जिससे मनुष्यके मनुष्यत्वमे बट्टा लगता हो या जो उसे ऊँचे उठानेके बदले नीचे गिरा दे।

समझनेकी बात है कि घोड़ा जब तक खूंटेसे बँधा रहता है तब तक वह उस खूंटेके चारो ओर घूम सकता है और उतनी ही दूर जा सकता है जितनी लम्बी रस्सीसे वह बँधा है। परन्तु बँधा रहनेके कारण वह न तो अधिक उछल कूद ही कर सकता है और न कहीं भाग ही सकता है। लेकिन खूंटेसे खुल जाने पर उसे इस बातकी आजादी मिल जाती है कि वह दुनिया भरमे जहाँ चाहे जाय और जैसी चाहे उछल-कूंद करे। इस प्रकार पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हैं, जिससे वे उसके घेरेके बाहर न तो जा सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, परन्तु मनुष्य बिलकुल आजाद है, वह जो चाहे कर सकता और विचार सकता है। हमारा यह कहना नहीं है कि मनुष्य भी अपनी आजादी खो दे और विचारशून्य होकर प्रकृतिरूपी खूटेसे बँध जावे, बल्कि हमारा यह कहना है कि वह किसी बातमें आँख मीचकर लकीरका फकीर न बने, किन्तु सभी बातोमे वह अपनी आजादी—स्वतंत्रताको कायम रक्खे और अपनी विचारशक्तिके अनुसार काम करे, और इस प्रकार अपनी आजादीकी बदौलत सदैव आगेको बढ़ता रहे। परन्तु अपनी इस आजादीकी लगामको होशयारीके साथ अपने हाथमें सँभाले रहे और उसे जरा भी विचलित न होने दे, नहीं तो मनुष्यकी यही

आजादी उसे कहींकी कहीं ले जाती है और उसे दुराचरणके गहरे गढेमे गिरा देती है ।

सीधी बात यह है कि घोड़ेको खूंटेसे नहीं बंधा रहने देना चाहिए, किन्तु उस पर सवार होकर उसे अपनी इच्छानुसार–जहाँ चाहे ले जाना चाहिए । परन्तु जो मनुष्य घोड़ेकी सवारी करनेमे पूर्ण होशियार होगा, जो घोड़ेको हाँकने और काबूमे रखनेकी तर्कीब जानता होगा–वही उसे अपनी इच्छानुसार चला सकेगा और अपने इच्छित स्थान पर पहुँच जायगा । परन्तु यदि सवार अनाड़ी होगा, या चलते चलते असावधान हो जायगा, तो उसको उसका घोड़ा न जाने कहाँका कहाँ ले जायगा और मनमानी उछल कूद करके वह स्वतः ठोकर खायगा और सवारकी भी हड्डी पसली चूर मूर कर देगा । बेचारे पशु तो अपनी प्रकृतिरूपी खूंटेसे बँधे हुए हैं–जिसके बाहर वे कहीं एक कदम भी नहीं रख सकते हैं, परन्तु मनुष्य अपनी विचारशक्तिके द्वारा इस खूटेको उखाड़ डालता है, और मनमानी करनेके लिए अपनेको आजाद छोड़ देता है । इस कारण यदि मनुष्य अपनी विचारशक्तिसे काम लेता रहे और अपने मनकी बागडोर सावधानीके साथ अपने काबूमे रक्खे, तो वह अवश्य ही परिणाममें सुख पावे और वह अपनेको बहुत शीघ्र उन्नतिके शिखर पर पहुँचा दे । परन्तु जो वह अपनी सावधानीमे तनिक भी चूक करे तो उसका मन उसे कुराहकी ओर ले जावेगा और उसे इधर उधर खूब भटका कर ऐसी जगह पटकेगा जहाँसे निकलना कठिन हो जायगा ।

४–इन्द्रियोंको वशमें रखना ।

छूना, चाखना, सूंघना, देखना और सुनना, इन्द्रियोके ये पाँचो विषय असावधान मनुष्यको बहुत अधिक सताते है और तरह तरहके मज़े चखाकर–प्रलोभन दिखाकर उसे ऐसा वावला वना देते हैं कि वह अपनी सव सुधिवुधि भूलकर उनका गुलाम बन जाता है। यदि मनुष्यको इनमेंसे कोइ एक ही विषय होता और असावधान मनुष्य उस एक ही विषयके वशमे होकर उसीकी धुनमें लगा रहता तो शायद उसकी इतनी अधिक फज़ीहत न होती, परन्तु उसके गलेमें तो इन पॅाचो विषयोका जवरदस्त फंदा पड़ा हुआ है, जिससे ये पॅाचो विषय उसको अपनी ओर खींच रहे हैं और उसे अपने ही वशमे कर लेनेका प्रयत्न करते रहते है। इस कारण इन विषयोंके द्वारा असावधान मनुष्यकी ठीक ऐसी दशा हो जाती है जैसे कि नाटकके तमाशेमे दो जोरूवाले कमजोर मनुष्यकी दिखलाई जाती है। उसकी एक जोरू जो छज्जेपर रहती है उसके दोनो हाथ पकड़ उसे ऊपरको खींचती है, और दूसरी जोरू जो नीचेके मकानमे रहती है टॅागे पकड़कर उसे नीचेकी ओर खींचती है। इससे उसे वेचारेकी जान मुसीबतमे पड़ जाती है और उससे कुछ भी करते धरते नहीं बनता है। यदि वह पुरुष उन दोनो स्त्रियोमेंसे किसी एकके वशमे हो जाता है और दूसरीको अकेली छोड़ जाता है तो उसकी दूसरी स्त्री भारी उपद्रव मचाती है और सारी रात रोने पीटने और कोसनेमे ही गॅवाती है। उसकी इस हरकतसे उस पुरुषकी नाकोदम आ जाती है और वह अपने विषय-भोगको भूल जाता है। इनके सिवा वे दोनो स्त्रियॅा अपनी अपनी सौत और उसकी सतानको सब

प्रकारसे तंग करने वदनाम करने और यहाँतक कि मार डालनेतकका भी उपाय करती हैं जिससे वास्तवमें उसी पुरुपका नुकसान होता है। यदि इन दोनो स्त्रियोमेंसे कोई वहुत उद्धत होकर व्यभिचारणी वन जाती है तो इससे भी उस पुरुपहीकी वदनामी होती है और वह दुनियामे मुह दिखलानेके योग्य नहीं रहता है।

असावधान मनुष्यकी ये पॉचो इन्द्रियॉ भी ऐसा ही नाटक रचती हैं और उसे अपनी अपनी ओर खींचकर उसकी खूव दुर्दशा करती हैं। वे उसकी विवेकशक्तिको खोकर, हानिलाभके विचारको भगाकर और उसके सव सुप्रवन्धोंको मिटाकर उसे संकटमे फॅसा देती हैं। ऐसी स्थितिमे वह पशुओसे भी वदतर वन जाता है। परन्तु सावधान मनुष्यके लिए उसकी ये इन्द्रियँा पॉच प्रकारके उत्तम औजारोंका काम देती है कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओंके अनेक गुणो-को पहिचानता है और जरूरतके अनुसार उन गुणोंको अपने काममें लाता है। वह छूने (स्पर्श) के द्वारा खुरदरा चिकना, हल्का भारी, नरम कठोर और ठंडा गरम आदि जानता है; चाखने (स्वाद) के द्वारा खट्टा मीठा, कड़वा कसैला आदि स्वाद जानता है; सूंघने (घ्राण) के द्वारा अनेक प्रकारकी गंध पहचानता है; आँखोंके द्वारा काला, पीला आदि रंग देखता है, लम्बा चौड़ा, गोल चौकोर आदि रूप जानता है, नजदीक दूर आदि अन्तर देखता है और ऊँचा नीचा आदि स्थानका ज्ञान करता है; कानोंसे अनेक प्रकारके ताल, स्वर और अनेक प्रकारकी वोलियँा पहिचानता है। इन सव वातोकी जानकारी प्राप्त करके वह अपने सुखके अनेक कार्य साधता है और दिन पर दिन उन्नति करता जाता है।

परन्तु इन पँाचों इन्द्रियोंसे काम लेनेमे मनुष्यकी वही दशा होती है जो सरकसके तमाशेमे दो घोड़ोंके सवारकी होती है, जो कभी तो अपना एक पैर एक घोड़ेकी पीठ पर और दूसरा पैर दूसरे घोड़ेकी

पीठ पर रख कर खड़ा हो जाता है और दोनों घोड़ोंको दौड़ाये चला जाता है, और कभी एक घोड़ेकी पीठ पर तो बैठ जाता है और दूसरेकी पीठ पर अपनी टाँगें रख देता है, और कभी किसी दूसरी ही तरहसे बैठता है, परन्तु प्रत्येक अवस्थामें अपने दोनों घोड़ोंको एकहीसी चालमें ले जाता है। सरकसके इस सवारको हर वक्त बड़ी सावधानीसे काम लेना और दोनों घोड़ोंको अपने काबूमें बनाये रखना पड़ता है। क्योंकि अगर एक घोड़ा जरा भी आगे पीछे हो जाय, या दोनों ही घोड़े काबूसे बाहर होकर ऐसी तेजीसे भागने लगें कि सवार सँभल न सके तो सवारकी कमबख्ती आ जाय और उसकी टाँगें चिर जायँ, या वह धड़ामसे नीचे आ गिरे, या अन्य किसी आपत्तिमे फँस जाय। इसी प्रकार मनुष्यको भी अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमें बड़ी सावधानी रखनेकी आवश्यकता पड़ती है और उनको अच्छी तरह अपने वशमें करना पड़ता है। यदि वह किसी समय जरा भी असावधानी करता है तो ये इन्द्रियाँ उसको धर दबाती है और उसे नीचे डालकर मिट्टीमे मिला देती हैं।

सरकसका खिलाड़ी तो दो घोड़ोंपर ही सवार होता है, परन्तु मनुष्यको अपनी पाँचों इन्द्रियोंपर सवार होना पड़ता है जो सरकसके घोड़ोंसे भी अधिक बलवान् और चञ्चल है। इस लिए अपनी इन्द्रियोंसे काम लेनेमे मनुष्यको बहुत सावधान रहना चाहिए तथा अपनी पाँचो इन्द्रियोंको भली भाँति वशीभूत करके उनकी चाल-ढाल पर पूरी पूरी देखरेख रखनी चाहिए। इन इन्द्रियोको काबूमें रखनेके लिए मनुष्यको ऐसी सावधानी रखनी उचित है जैसी कि गोलियाँ उछाल कर तमाशा दिखानेवाला रखता है। वह दस दस, बारह बारह और कभी कभी इससे भी अधिक गोलियाँ ऊपरको उछालने लगता है। वह एकको उछालता है और दूसरीको पकड़ता है, फिर उसको उछालता है और तीसरीको पकड़ता है, इस प्रकार

सभी गोलियोंका एक ऐसा तांता बँध देता है कि सभी गोलियाँ ऊपरको जाने लगती हैं और उनमेंसे एक-एक गोली क्रमसे उसके हाथमें आती जाती है जिसको वह फिर उछालता जाता है और दूस-रीको पकड़ता जाता है। इस खेलमें उसको आकाशमें उछलती हुई सभी गोलियोंका पूरा पूरा खयाल रखना पड़ता है। वह न तो किसी गोलीको ऐसा बेतौर उछलने देता है कि वह अधिक ऊँची चली जाय, या इधर उधर निकल जाय, और न किसी गोलीको इस तरह उतरने ही देता है कि वह जमीन पर गिर जाय; बल्कि वह सभी गोलियोंको अपने काबूमें रखता है और जिस तरह चाहता है उनको नचाता है।

इसी प्रकार मनुष्यको भी उचित है कि वह अपनी पाँचों इन्द्रि-योंसे काम लेता रहे, परन्तु किसी इन्द्रियको इस प्रकार न उछलने दे कि वह उसकी जरूरतसे बाहर निकल जाय या इधर उधर विचल जाय, बल्कि अपना समय, अपनी अवस्था, अपनी हैसियत, अपनी परस्थिति, अपनी आमदनी और खर्च, अपना आगा पीछा, सुख दुःख, हानि लाभ और सब प्रकारकी जरूरतोंका विचार करके तदनुसार अपनी इन्द्रियोंको चलावे और अपनी सभी इन्द्रियोंका समुचित उपयोग करके उनसे पूरा पूरा आनन्द उठावे। परन्तु कभी भूलकर भी इन्द्रियोंके वशमें न होवे और न कभी किसी इन्द्रियसे जरूरतसे अधिक काम ही लेवे; बल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेता रहे और जिस समय जैसा उचित समझे वैसा ही करे और अपनी इन्द्रियोंको भी उसी प्रकार परिचालित करता रहे।

५—क्रोधादि कषायोंको वशमें रखना ।

जिस प्रकार ये पाँचो इन्द्रियाँ मनुष्यके पाँच तरहके अद्भुत औजार है कि जिनके द्वारा वह संसारकी वस्तुओके अनेक गुणोको जानता है और यदि उसकी कोई इन्द्रिय बिगड़ जाती है तो उसका उस इन्द्रियविषयक ज्ञान भी लुप्त हो जाता है और वह कठिनाईमे पड़ जाता है; बल्कि आँख और कान इन दो इन्द्रियोंके बिगड़ जानेसे तो उसका संसारमे विचरना और जीना ही कठिन हो जाता है—इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष, स्नेह, रंज, खुशी और भय आदि कपाय भी उसकी ऐसी प्रबल शक्तियाँ हैं कि जिनके द्वारा वह संसारके सब कार्य्य करता है। यदि उसमे ये शक्तियाँ न होतीं तो वह कुछ भी न कर सकता, बल्कि निष्क्रिय होकर अंतमे मर जाता। जिस प्रकार इन्द्रियोंसे सावधानीके साथ काम न लेनेपर वे मनुष्योपर अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं और धीरे धीरे उद्धत होकर मनुष्यसे मनचाहा नाच नचाने लगती हैं, उसी प्रकार यदि इन लोभादिक शक्तियोसे काम लेनेमे असावधानी होती है और उनकी पूरी पूरी चौकसी नहीं की जाती है, तो ये शक्तियाँ भी इन्द्रियोसे अधिक उद्धत हो जाती हैं—महा भयंकर बन जाती है और बहुत उपद्रव मचा देती हैं। इस लिए इन लोभ क्रोधादिक महान् शक्तियो—हृदयके इन जबरदस्त उफानो-को खूब सावधानीके साथ काबूमें रखना, अपनी जरूरतके अनुसार उनसे काम लेना और सीमासे अधिक उमरने न देना बहुत जरूरी है। बल्कि अपने हानि-लाभ और सुख-दुःखके विचारोके द्वारा इस बातका पूरा पूरा प्रबन्ध कर लेनेकी भी आवश्यकता है कि इन शक्तियोंमेंसे किससे कब कितना काम लिया जावे, अर्थात् हृदयके इन आवेगों या उफानोंमेसे कब किस उफानको कितना उठाया जाय या कितना कौन दबाया जाय।

मनुष्यके हृदयमे उठनेवाले इन आवेगो या उफानोकी ठीक ऐसी दशा है जैसी कि किसी कारखानेके एंजिनमे भाफकी होती है। कारखानेमे पीसने, कूटने, ढलने, फटकने, बुनने, कातने, औटने, चीरने, फाड़ने, ठोकने, पीटने आदि अनेक कामोंके लिए अलग अलग कलें लगी हुई होती हैं और वे सब कलें उस एक एंजिनकी भाफकी ताकतसे ही चलती हैं। परन्तु उस कारखानेमें ऐसा प्रबन्ध बँधा रहता हैं कि कारखानेवाला जिस समय जिस कलको चलाना चाहता है उसीमें भाफकी शक्ति पहुँचा कर उसे चला देता है और जब चाहता है तब उसे बंद कर देता है। बीच बीचमे वह अपनी जरूरतके अनुसार उस कलके वेगको न्यूनाधिक शक्ति पहुँचाकर मंद या तेज भी कर देता है। मतलब यह कि कारखानेकी सब कलें उसके वशमे रहती हैं, वह जब जब जिन जिन कलोंको चाहता है तब तब उन्हे चला लेता है और जब जीमे आता है तब उन्हे बंद कर देता है और अपनी इच्छानुसार उनसे काम लेता है। परन्तु ऐसा उत्तम प्रबन्ध होने पर भी जब वह कारखानेवाला जरा असावधान हो जाता है और किसी कलमें जरूरतसे ज्यादा शक्ति पहुँचा देता है तो वह कल पहले तो उसी कार्य्यको नष्ट भ्रष्ट कर डालती है जो काम उसके द्वारा हो रहा हो, परन्तु जब वह कुछ और भी तेज हो जाती है तब वह अपने ही कल पुर्जे तोड़ने लग जाती है, और यदि बहुत ज्यादह गड़बड़ी मच जाती है तो वह भाफकी शक्ति उस सारे कारखानेको तहस नहस कर डालती है और दूर दूर तक धावा करके आसपासके मकानोंको भी नष्ट कर देती है, और इस तरह सारे नगर भरमें हाहाकार मचा देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी एक बड़ा भारी कारखाना है। जीव कारखानेवाला है और मस्तिष्क उसका दफ्तर है, जिसमें बैठकर वह सब कार्य करता है और सब का हिसाब-किताब रखता है। पाँचों इन्द्रियाँ

उसके पाँच जासूस या विशेषज्ञ है, जिनके द्वारा वह वस्तुओंके अनेक गुणोंको जानता है और अपनी जरूरतके अनुसार उनको काममे लाता है। हृदय इस कारखानेका बड़ा भारी एंजिन है जिसमे हरवक्त भाफ उत्पन्न होती रहती है और वही भाफ क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, रंज, खुशी, और भय आदि शक्तियोंके रूपमे प्रकट होकर मनुष्यरूपी कारखानेको चलाती है, परन्तु जब जीव ग़ाफ़िल हो जाता है और मस्तिष्करूपी दफ्तरमे बैठकर पूरी पूरी सावधानीसे काम नहीं लेता, या इन शक्तियोंको अपने काबूमें रखकर जरूरतके अनुसार उन्हें तेज या हल्की नहीं बनाता है और उनको अनियमित या अन्धाधुन्ध चलने देता है, तब ये शक्तियाँ मनुष्यरूपी कारखानेको नष्ट कर डालती हैं और उनके झपेटेमे और भी जो कोई आ जाता है उनको भी वे भारी धक्का पहुँचाती हैं। इस तरह मनुष्यजातिके प्रबन्धमे एक भारी गडबड़ मच जाती है और संसारमे असंतोष और अशान्ति फैल जाती है।

मनुष्यकी इन क्रोध मान आदि शक्तियोंकी पृथक् पृथक् रीतिसे परीक्षा करने पर जाना जाता है कि ये सभी एक खास हदतक उसका उपकार करनेवाली है। सबसे पहले हमे मानके विषयमें विचार करना चाहिए। मनुष्यको यह मान कषाय अनेक प्रकारकी बुराइयोसे बचाता है, उसके परस्परके व्यवहार चलाता है, आपसमें विश्वास स्थापित करता है, अनेक प्रकारके ज्ञान और कला-कौशल सीखनेको उसे उत्साहित करता है, रात दिन परिश्रम करने और आजीविका बढ़ानेकी ओर लगाता है, उससे बड़े बड़े बहादुरी और चतुराईके काम कराता है और उसे सब तरहकी उन्नतिकी ओर खींच ले जाता है। इसके विपरीत जिस मनुष्यमे स्वाभिमानकी मात्रा कम हो जाती है वह बिलकुल ढीठ और बेशरम बन जाता है और नीचसे नीच कर्म करने तथा कर्महीन बन जानेसे भी नहीं हिच-

कता है । वह दूसरोंका धिक्कार या तिरस्कार सहन करके पराये टुकड़े तोड़नेमें तनिक भी नहीं लजाता है। सच तो यह है कि जिसके हृदयमें अपनी मान-मर्यादाका खयाल नहीं है वह वास्तवमे मनुष्य ही नहीं है; न तो उसपर किसी प्रकारका विश्वास ही किया जा सकता है और न उसका भरोसा ही। सच पूछो तो ऐसे आदमीसे न किसी प्रकारका व्यवहार करना उचित है और न वह पास बिठलानेहीके योग्य है। क्योंकि जिसे अपनी इज्जत आबरूका ख्याल नहीं है—अपनी मान-मर्य्यादाकी सुधि नहीं है, उसे दूसरेकी इज्जत बिगाड़ने या मान-मर्य्यादा भंग करनेमे क्या देर लगती है।

परन्तु इस मानका अधिक वढ़ जाना भी वहुत हानिकारक है। क्योंकि अधिक मानी पुरुष अपनी ऐंठहीमें चलता है, आप तो किसीसे दवना नहीं चाहता है किन्तु दूसरोंको सदैव दवाता रहता है। उसकी इस चालसे अनेक आदमी उसके वैरी वन जाते हैं। इसके सिवा मानी पुरुष अपनी स्थिति, वल, आमदनी और जरूरतोंका ख्याल न करके अपनेसे वड़ोंका अनुकरण करने लग जाता है और अपनेको बड़ा सिद्ध करनेमे अपना सर्वस्व लगा देता है। इसका फल यह होता है कि वह इस बड़प्पनके जालमें फँस कर अपनी असली मान-मर्यादा भी खो देता है, और जब उससे कुछ नहीं बन पड़ता है तव वह दूसरोंसे डाह करने लगता है। अर्थात् स्वयं दूसरोंके वरावर उन्नति न कर सकने पर वह दूसरोंकी बढ़ती देखकर उससे मन-ही-मन जलने लगता है और उसे नींचे गिरानेका नित्य प्रयत्न भी करने लगता है। इतने पर भी जव उसका कोई प्रयत्न नहीं चलता, तब वह मन-ही-मन उसके वर्बाद हो जानेकी भावना करता है और इसके लिए प्रतिदिन परमपिता परमेश्वरकी स्तुति करके उससे यही विनय करता है कि 'हे प्रभो! उसका शीघ्र नाश कर दे।'

इस मानके बढ़ जानेपर मनुष्य अपनी जाति, घराने और पूर्व अवस्थाके घमडमे आकर अपनी आजीविकाके बहुत सुलभ और उत्तम उत्तम उपायोंको भी पसन्द नहीं करता है और बेकार बैठकर अपनी पहली पूंजीको खा डालता हैं। अतमें बहुत शीघ्र भूखों मरने या भीख माँगनेकी नौबत आ जाती है-जिससे उसकी रही सही मान-मर्यादा भी नष्ट हो जाती है, और वह विवश होकर फिर अपने पेट पालनेके लिए ऐसे ऐसे खोटे काम करने लगता है कि जिसे सुनकर आश्चर्य्य होता हैं—अर्थात् वह बिलकुल भ्रष्ट और निर्लज्ज बन जाता है। इसी प्रकार जिन लोगोको अपनी झूठी मान-मर्यादा बढ़ानेको धुन सवार हो जाती है वे—यह सोचकर कि धनसे ही इज्जत बढ़ती है—धन प्राप्तिके लिए बड़े बड़े अन्याय और कुकर्म करने लगते है। परन्तु ऐसा करनेसे वे शीघ्र ही किसी ऐसे झगड़ेमें फँस जाते है कि उन्हे जैलकी हवा खानी पड़ती है और उनकी रही सही इज्जत और साख भी धूलमे मिल जाती है। कहनेका मतलब यह है कि झूठे मानके फेरमे पड़कर मनुष्य स्वय बर्बाद हो जाता है और दूसरोंको भी नुकसान पहुँचाता हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार मनुष्यको अपने मानका खयाल छोड़ देनेसे हानि होती हैं, उसी प्रकार उसके जरूरतसे अधिक बढ़ जानेसे भी उसे नुकसान पहुँचता है, अतएव उसे उचित हैं कि वह सदैव अपनी विवेक-बुद्धिसे मानके सामञ्जस्यको बनाये रक्खे अर्थात् उसकी मर्यादाको न तो जरूरतसे अधिक बढ़ने दे और न घटने दे।

इसी प्रकार यदि मनुष्यके लोभ न हो तो वह न तो ससारकी वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए कोई प्रयत्न करे और न किसी वस्तुको सँभालकर रक्खे। मतलब यह कि उसकी गृहस्थीका ढाँचा ही बिगड जाय और वह पशु पक्षियोकी श्रेणीमें आ जाय। परन्तु लोभकी मात्रा बढ़ जाने पर भी उसकी जो दुर्गति होती है—उसे जो आप-

त्तियाँ उठानी पडती हैं वे किसीसे छिपी नहीं है। यह मनुष्य अति लोभमे पड़कर गैरजरूरी वस्तुओंका संचय करता, हजार दुःख झेलता और बड़ी जरूरतके समय भी उनको खर्च नहीं करता है। उनकी रक्षाके लिए अपनी जान निछावर करता और उनकी प्राप्तिके लिए महा अन्याय और नीचसे नीच कर्म करनेमे भी नहीं चूकता है। न तो वह राजदंडसे डरता है और न उचित अनुचितका ही विचार करता है। इस लोभकी प्रबलताने संसारमे ऐसा घोर उपद्रव मचा रक्खा है कि मनुष्य जगतके हिंस्र पशुओसे भी अधिक दुष्ट और परापहारक बन गया है—वह दूसरोको हानि पहुचाने, दूसरोंके हक छीनने और दूसरोका माल हडप जानेमे जरा भी नहीं हिचकता है। मनुष्य जातिमे अशान्ति फैलनेका यह भी एक कारण है। प्रायः सभी मनुष्य अपना अपना स्वार्थ साधने और आपापोखीपनेमे पड़ गये हैं जिससे मनुष्योंके पारस्परिक व्यवहारका ढाँचा बहुत ही बिगड़ गया है। अतएव मनुष्यको उचित है कि वह अपनी लोभवृत्ति पर भी कड़ी निगाह रक्खे और कभी उसे सीमासे ऊपर नीचे न खसकने देवे।

मान और लोभके समान क्रोध भी मनुष्यकी एक बड़े कामकी शक्ति है। इस क्रोधके द्वारा ही वह अपने शत्रुओंको हटाता और अपनी मान-मर्यादा, धन-सम्पत्ति आदिकी रक्षा करता है। परन्तु बात बात पर क्रोध लाना, बिना जरूरतके उसका उपयोग करना और उसकी तेजीमें आकर आपेसे बाहर हो जाना या और अनुचित कार्य्य करने लगना बहुत बुरा है। अतएव क्रोधको भी सदैव अपने वशमे रखना चाहिए। याद रक्खो कि जिस प्रकार घरमें जलाई हुई अग्नि घरकी वायुको शुद्ध कर देती है, शरीरकी अग्नि पसीनेको निकालकर खूनको साफ करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्नि भी मनुष्यके वैरियोंको दूर हटाती है और अनेक उपद्रवोंसे बचाकर उसे सुख शान्ति दिलाती है। परन्तु जिस प्रकार घरमे जलाई हुई अग्नि अधिक भड़क जाने

पर बेकाबू होकर घरको ही जला डालती है, शरीरकी अग्नि अधिक बढ़ जानेसे खूनको सुखा डालती और अनेक प्रकारकी बीमारियैं पैदा करती है, उसी प्रकार क्रोधाग्निके अधिक भड़क जाने पर भी बहुत बुरा नतीजा निकलता है। इस लिए क्रोधको अपने काबूमे रखना और उसे सीमासे बाहर न बढ़ने देना बहुत लाजिमी है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना चाहिए कि बात बातमे बिगड़ना, हर समय रूठना, चिढ़चिढ़ा स्वभाव बनाना, सदैव नाक भौं चढ़ाये रहना, रोष भरी बातें करना ये सब कमजोरीकी निशानियाँ हैं। ऐसा करनेसे अपना कुछ भी गौरव नहीं रहता है और छछोर-पन ही समझा जाता है। अतएव मनुष्यको हरसमय प्रसन्नचित्त और हँसमुख रहना चाहिए, और बात बातमें क्रोध नहीं दरसाना चाहिए। इसके सिवा अपनी संतानको, शिष्योंको, नौकरोंको या अन्य किसी अपने अधीनको सुधारनेके लिए दंड देनेमें या न्यायाधीश बनकर अपराधीको सजा देनेमे कभी भूलकर भी क्रोध नहीं लाना चाहिए, बल्कि उसके सुधारने और दूसरोको उत्तम शिक्षा मिलनेके खयालसे यह काम बहुत शान्ति और विवेकके साथ करना चाहिए। ऐसे कामोका क्रोधसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

कभी कभी मनुष्य ऐसी कठिनाईमे भी फँस जाता है कि सीधे-सादे उपायोसे न वह अपने जान मालकी रक्षा कर सकता है न अपने प्रबल बैरीकी चोटसे बच सकता है और न किसी भारी फितने-फिसादको दबा सकता है। ऐसे कठिन प्रसंगके लिए मनु-ष्यके पास माया नामक एक शक्ति रहती है कि जिसके द्वारा वह झूठमूठ बाते बनाकर या कुछका कुछ दिखा कर अपनी जान बचा सकता है या किसी भारी फिसाद या उपद्रवको दबा सकता है। परन्तु इस निंद्य शक्तिका उपयोग अत्यन्त लाचारी दरजे या बहुत जरूरी समयके सिवा और कभी न करना चाहिए; बल्कि जहाँतक

हो सके इससे दूर ही रहना उचित है। क्योंकि मनुष्यका मनुष्यत्व परस्परके व्यवहारसे ही बनता है और परस्परका व्यवहार आपसके विश्वासके विना कदापि नहीं चल सकता है। इस कारण आपसके विश्वासमे जितना धक्का लगता है मनुष्यका मनुष्यत्व भी उतना ही बिगड़ता है। इस लिए इस मायाचार करनेकी शक्तिको सदैव दवाये रखना ही उचित है। इसका उपयोग तो किसी ऐसी महान् लाचारीके समय ही करना चाहिए जब कि दूसरी कोई तदवीर चल ही न सकती हो और उसके विना सिरपर कोई वड़ी भारी आपत्ति आती हो। परन्तु खेदकी वात है कि आज कलके मनुष्य बात वातमें मायाचारसे काम लेते हैं और झूठ, फरेव, धोखेवाजी, जालसाजी, आदिसे ही अपने छोटे वड़े सब काम चलाते है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्यके परस्परके व्यवहारमें वहुत वट्टा लग गया हैं और मनुष्य जातिकी वास्तविक उन्नतिका क्रम रुक गया है। इससे मनुष्य जातिकी सारी सुख-शान्ति नष्ट हो गई है और उसके दुःखोंकी संख्या वढ़ गई हैं। इस मायाचारने भारतवर्षको विशेष रूपसे घेर लिया है कि जहाँ लाखों आदमी मिलकर बड़ी बड़ी कम्पनियाँ तो क्या चलायँगे, दो सगे भाई भी मिलकर अपना साँझा नहीं निभा सकते है। इसी लिये हिन्दुस्तानका व्यापार नहीं पनपने पाता है, और जरा जरासी चीजोंके लिए हमे दूसरोंका मुंह ताकना पड़ता है।

भय भी मनुष्यकी बहुत रक्षा करता है। यदि सच पूछो तो भय ही उसे सब प्रकारकी बुराइयों और आपत्तियोंसे वचाता है। यदि मनुष्यको भय न होता तो वह जलती हुई आगमे कूद पड़ता और अपनी हानि लाभका विचार किये विना ही ऐसे ऐसे अनेक उलटे पुलटे काम करता रहता। परंतु इसके विपरीत विनाकारण भयकी कल्पना करना, जो आपत्ति आनेवाली है और टाले नहीं टलती है उसके

झेलनेके लिए तैयार न होना, किसी आपत्तिके आनेपर भयके मारे अपने होश खो देना, भयके समय धीरजको छोड़कर आपत्तिसे बचनेका कोई उपाय न कर सकना, डरके मारे हक्के बक्के हो जाना, या अपनी रक्षाके मार्गको निश्चित न कर सकना और बिना जरूरत भयके सन्मुख जाकर अपना सर्वनाश कर लेना, इत्यादि बाते ऐसी है जो भयका दुरुपयोग करने या उसकी मात्राके बढ़ जानेसे होती है और जिनके कारण मनुष्य पर भारी विपत्तियॉ आती हैं और दुःखकी भयकरता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि ससारके प्रायः सभी कार्योंमे हानि लाभ, सम्पत्ति विपत्ति और सुख दुःख लगे रहते है, अर्थात् यहाँ कोई भी कार्य्य ऐसा दिखाई नहीं देता है कि जिसमे केवल सुख ही सुख हो और दुःख नामको भी न हो, या जिसमें केवल लाभ ही लाभ हो, हानि जरा भी न हो। ऐसी अवस्थामे मनुष्योको उन कामोंसे भय खाना चाहिए जिनमे हानि अधिक हो और लाभ कम हो और अपनी विचारशक्तिसे ऐसे काम चुन लेना चाहिए जिनमे विपत्ति कम हो और लाभ अधिक हो। परन्तु जिन लोगोंमे भयकी मात्रा बढ़ जाती है उनकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है, इस कारण वे इस बातका निश्चय नहीं कर सकते हैं कि किस कार्य्यमें अधिक विपत्ति है और किसमें कम। यदि कोई उनका इसका निश्चय भी करावे तो वे भयके मारे कम विपत्तिवाले कामोंको भी करनेका साहस नहीं करते है और भय तथा आकुलताहीमे अपना जीवन बितादेते हैं। इस कारण प्रत्येक कार्य्यमे भयसे काम तो अवश्य ही लेना चाहिए, परन्तु उसको जरूरतसे ज्यादः हर्गिज़ न बढ़ने देना चाहिए।

स्नेह और द्वेष, रंज और खुशी भी मनुष्यकी बहुत कामकी चीजे हैं। सच पूछो तो ये चारो शक्तियाँ मनुष्यसे तरह तरहके काम कराती है और उसको उन्नतिके मार्गपर चलाती हैं। परन्तु ये चारों

बातें भी तभी तक लाभकारी होती हैं जब वे अपनी उचित मर्यादाके भीतर रहती हैं। मर्यादा उल्लंघन करनेपर तो वे भी बहुत भयंकर हो जाती हैं और मनुष्यको बहुत हानि पहुँचाती है। जैसे कि स्नेह या मुहब्बतकी आग बढ़ जानेसे मनुष्य उस स्त्री या पुरुषसे मुहब्बत करने लगता हैं जिससे मुहब्बत करनेका उसको अधिकार नहीं होता है। फल यह होता है कि उसे धक्के खाने पड़ते हैं और अपमानित होना पड़ता है। वह इस मुहब्बतमें कभी कभी ऐसा विव्हल हो जाता है कि अपने तथा अपने प्रेमपात्रके, दोनोंके हानि लाभको भूल जाता है। जैसा कि इस देशके मातापिता अपनी सतानके स्नेहमें ऐसे बेसुध हो जाते हैं और लाड-प्यार करके उनको ऐसा बिगाड़ देते है कि फिर उनको सारी उम्र धक्के ही खाने पडते हैं और अपने माता पिताके वे दु:खदाता बन जाते है। स्नेहकी मात्रा बढ़ जानेसे मनुष्यकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है और उसे अपने प्रेमपात्रकी बुराइयाँ भी भलाईके रूपमे दिखाई देने लगती हैं। इस तरह उसके प्रति पक्षपातकी मात्रा बढ़ जानेसे वह बिलकुल विचारशून्य हो जाता है। इसी प्रकार नफरत या द्वेषकी मात्रा बढ़ जानेसे भी मनुष्य अपनी विचारशक्तिको खो बैठता हैं और जिससे द्वेष हो जाता है उसकी भलाई या गुणको भी वह बुराई या दुर्गुण समझने लगता है। वह उसके नामसे नफरत करने लगता हैं और उसकी शकल देखकर मुंह फेर लेता है। बल्कि कभी कभी तो यहाँतक होता है कि वह जिस वस्तुसे नफरत करता हैं उसका नाम सुनकर ही उबकाई लेने लग जाता है। इसी प्रकार रंजके बढ़ जानेसे भी मनुष्यकी अकल मारी जाती है और वह पागलो जैसे कार्य्य करने लगता है। वह अपना सिर फोड़ता है, छाती पीटता है, कपड़ फाड़ता है, बाल नोंचता हैं, जहर खा लेता है, पानीमे डूब मरता हैं, आत्मघात कर लेता है या ऐसे ऐसे और भी कई तरहके विपरीत

कार्य्य करता है। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो रंज मनुष्यका ऐसा उत्तम वन्धु है जो किसी कार्य्यके बिगड़ जाने पर या इच्छाके विपरीत कार्य्य हो जानेपर उसको समझाता है कि यह कार्य हमें इतना अधिक प्यारा है कि जिसके लिए बारंबार प्रयत्न करने और नवीन नवीन युक्तियोंसे काम लेकर उसे किसी न किसी प्रकार सिद्ध करनेको जी तड़फता है, अर्थात् रंज यही सिखलाता है कि इस कार्य्यके बिगड़ जाने पर इससे मुंह नहीं छिपाना चाहिए, बल्कि पहलेसे अधिक साहस करके जिस तरह हो सके इस बिगड़े कार्य्यको बनाकर ही छोड़ना चाहिए। परन्तु मूर्ख लोग अधिक रंज करके अपने साहसको खो बैठते हैं और अपनी बुद्धिको भ्रष्ट करके उस कामको ही छोड़ देते हैं, बल्कि रंज मनानेमें लगकर अपने अन्य जरूरी कामोंको भी बिगाड़ लेते हैं और इस तरह अपनी हानि पर हानि करते हैं। वे रंज जैसी उत्तम शक्तिको बदनाम करके कहने लग जाते हैं कि क्या करें, हम तो रजमें पड़े रहनेसे कुछ भी न कर सके और हमारे सभी काम बिगड़ गये। अत एव मनुष्यको उचित है कि वह भारीसे भारी विपत्ति आनेपर या अच्छेसे अच्छा काम बिगड़ जाने पर भी कभी अधिक रंज न करे और अपनी बुद्धि या साहसको कभी बिगड़ने न दे, बल्कि रज या खेदकी अवस्थामें साहस और बुद्धिसे अधिक काम लेवे और अपने बिगड़े हुए कामको सुधारनेका प्रयत्न करे। यदि कोई ऐसी आपत्ति आपड़े कि जिसकी किसी प्रकार पूर्ति न हो सकती हो, तो ऐसी अवस्थामे विलकुल रंज न करे और अपने मनमें संतोप धारण करके उस अवस्थाके अनुकूल किसी ऐसे उत्तम कार्य्यमे लग जावे कि जिससे वह रंज भूल जाय। अर्थात् रजकी कोई बात हो जानेपर खाली कभी न बैठे, क्योंकि खाली बैठनेसे रज बढ़ता है और रजके सिवा और कुछ नहीं सूझता। इस लिए रंजके समय तो अवश्य ही किसी न किसी काममे लग जाना चाहिए और उसे इतनी

तनदेहीके साथ करना चाहिए कि जिससे और कोई खयाल पास न आने पावे।

खुशी या आनन्द भी मनुष्यकी उन्नतिमें बहुत सहायता पहुँचाता है। क्योंकि वह उसे अच्छे अच्छे और लाभकारी कामोंको करनेके लिए उत्तेजित करता है। एक खुशी मनुष्यको दूसरे ऐसे खुशीके कामको करनेके लिए प्रोत्साहन देती है कि जिससे पहलेकी अपेक्षा अधिक खुशी हो। परन्तु खुशीमें आपेसे बाहर हो जाना या खुशीके मारे अन्य आवश्यकीय कामोंको भूल जाना भी बहुत हानिकारक है। इसके सिवा अधिक खुशी मनानेमें सबसे बड़ी बुराई यह होती है कि जिस कामके लिए पहले अत्यधिक खुशी की जाती है उसके बिगड़ जानेपर उतना ही अधिक रंज भी होता है। संसारी कामोंका बनना बिगड़ना अपने हाथमें न रहनेके कारण उनके लिए अधिक खुशी या रंज मनाना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यको रंज और खुशीसे कभी छुटकारा ही नहीं मिल सकता है।

गरज यह कि लोभ क्रोधादिक सभी उफान जब तक मनुष्यके वशमें रहते हैं, दबानेसे दबते हैं और उभारनेसे उभरते हैं, और जब तक वह अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर उनको अपनी इच्छाके अनुसार चलाता रहता है तबतक वे उसके बहुत कार्य्यकारी और सहायक रहते हैं,परन्तु जब वह बेपरवाह हो जाता है और इनकी पूरी पूरी देखभाल नहीं रखता है तब ये ही शक्तियाँ उस पर अपना अधिकार जमा लेती हैं और उसे कठपुतलीकी नाईं नचाकर उसे बरबाद कर डालती हैं। जो मनुष्य यह कहता है कि 'मुझे अमुक आदमीने गुस्सा दिलाया,' या 'क्या कहूँ मुझे गुस्सा आही गया,' समझना चाहिए कि वह अपने गुस्सेको काबूमे नहीं रखता है, बल्कि वही गुस्सेके काबूमें है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसीकी खुशामदमे आ जाता है या अपनी बड़ाई सुनकर फूल जाता है, समझना चाहिए कि उसे

अभिमानने ऐसा दबा रक्खा है कि वह अपनी विवेकशक्तिसे भी काम नहीं ले सकता है। इसी प्रकार अन्य सभी बातोंमे समझ लेना चाहिए और क्रोधादिक आवेगो पर अपना पूरा पूरा चौकी पहरा रखना चाहिए। किसी भी शक्ति या उफानको अधिक उभरने या शिथिल न होने देना चाहिए, वरन् उनसे यथोचित काम लेते रहना और उन्हे अपनी जरूरतोके अनुसार चलाना चाहिए। इस बातका भी हर वक्त ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार खीर पकानेके लिए चूल्हेमे आग जलाते रहना जरूरी है, उसी प्रकार सांसारिक कामोको करनेके लिए मनुष्यके हृदयमे लोभ, क्रोध, मान आदि कषायोंकी आगका रहना भी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार जो रसोइया जरूरतके अनुसार चूल्हेकी आगको कमती बढ़ती करता रहता है वह अच्छी रसोई बना लेता है, परतु जो अनाड़ी पूरी सावधानी नही रखता वह चूल्हेकी आगको या तो बिलकुल कम कर देता है जिससे उसकी खीर अधकच्ची ही रह जाती है, या वह उस आगको इतनी तेज कर देता है कि जिससे उफान आकर सारी खीर बाहर निकल जाती है या बर्तनहीमे जल जाती है। इसी प्रकार जो बुद्धिमान् पुरुष अपने हृदयके आवेगोंकी आगको अपने काबूमे रखता है और जरूरतके अनुसार उसे मन्द या तेज करके सावधानीसे काम लेता है वह अपने सब कामोको उत्तम रीतिसे पूर्ण करके संसारमे यश पाता है, परंतु जो मूर्ख असावधान रह कर अपने कषायोंके सामञ्जस्यको बिगाड़ देता है वह स्वतः बिगड़ जाता है और संसारमें बदनाम होता है। इस लिए मनुष्यको सदैव सावधान रहकर विवेकके साथ काम करना चाहिए, क्योंकि ऐसा किये बिना उसका इस बहुरंगी दुनियामे निस्तार नहीं है।

६—खराब आदतें न पड़ने देना चाहिए।

जिसप्रकार लट्टू पर डोरा लपेटकर घुमानेसे वह लट्टू डोरा अलग हो जाने पर भी वहुत समय तक घूमता रहता है, उसी प्रकार संसारकी सभी वस्तुये संस्कारोंके अधीन हो जाती हैं, अर्थात् वे अपने अभ्यासके वशीभूत हो जानेपर आपसे आप वैसा ही काम करने लगती है और उसके विरुद्ध चलनेमे झिझकती हैं। यही अभ्यास बढ़ते बढ़ते एक प्रकारका स्वभाव वन जाता है और फिर उस अभ्यासका छुटाना या जरूरतके समय उसे दूसरे मार्गपर चलाना कठिन हो जाता है। इसी कारण बहुतसे मनुष्य अपनी आदतसे लाचार होते है और मौका वेमौका, समय कुसमय उसी आदतके अनुसार चलकर तकलीफ उठाते हैं, बड़ी बडी विपत्तियोमें पड़ जाते हैं और फिर भी अपनी उस आदतको नहीं छोड़ सकते है। इसकारण मनुष्यको उचित है कि वह अपनेमे भली या बुरी किसी प्रकारकी आदत न पड़ने दे, सव तरहसे स्वतंत्र रहे और जब जैसी जरूरत हो उसीके अनुसार चले; परन्तु यदि इतना न हो सके तो कमसे कम बुरी आदतें तो कदापि न पड़ने दे और इसके लिए पूरी पूरी सावधानी रक्खे।

मनुष्यको सबसे जल्दी और सुगमताके साथ उन सब चीजोंके खाने पीने और सूघने आदिकी आदत पड़ती है—जो नशा करती है। नशेकी ये सब चीजें बहुधा बहुत ही बदमजा और दुर्गन्धयुक्त होती हैं कि जिनके खाने या सूंघनेसे कै आती है, या सिरमें चक्कर आकर बेहोशी सी हो जाती है। परन्तु थोड़े ही दिनोंमे जब इन चीजोंकी आदत पड़ जाती है तब इनके कारण शरीरमें बड़े बड़े रोग पैदा हो जाने पर भी इनके छोड़नेको जी नहीं चाहता है, और यदि किसी

प्रकार इनके छोड़नेकी इच्छा भी की जाय तो इनका छोड़ना असम्भवसा हो जाता है। इन नशोंकी शीघ्र आदत पड़ जानेका कारण यह मालूम होता है कि इनसे मनुष्यका दिमाग खराब हो जाता है, विवेकशक्ति शिथिल पड़ जाती है और भले बुरेकी पहिचान घट जाती है। इन नशोंसे शरीरमे थोड़ी देरके लिए गरमी बढ़ जाने और चेतनतासी मालूम होनेपर मनुष्य समझ लेता है कि हमारा बल बढ़ गया है और वह आनंद मनाने लगता है। ये सब नशे किसी प्रकार भी न तो मनुष्यके कुछ काम ही आते हैं और न उसको सुख पहुँचाते है, बल्कि उसके शरीरका सत्यानाश करके उसमें अनेक प्रकारके भयंकर रोगोंको पैदा कर देते है; और अगर किसी समय नशेके मिलनेमें देरी हो जाती है तो वे उसकी बहुत ही बुरी हालत बना देते हैं। इसीलिए नशेवाज अपने सभी जरूरी कामोंको छोड़कर नशा पूरा करनेकी अधिक फिकर रखते और अपने नशेको ही सबसे मुख्य कार्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके ज़रूरीसे ज़रूरी काम भी पड़े रहते हैं और उनकी गृहस्थी बिगड़ जाती है। अतएव मनुष्यको इन नशोंको कभी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए और सदैव इनसे दूर रहना चाहिए।

बहुतसे मनुष्य इन बुरी आदतोंसे बचनेके लिए अपने ऊपर एक प्रकारकी जबरदस्तीसी किया करते हैं, अर्थात् वे ऐसी चीज़ोंके त्यागकी कसम खा लिया करते है; परन्तु हमारी समझमे जो मनुष्य इतना कमज़ोर है कि आगे अपनी विवेकशक्तिसे काम नहीं ले सकता है और बिना कसम खाये बुरी बातोंसे नहीं बच सकता है, उससे इस बातकी क्या आशा की जा सकती है कि वह आगे अपनी कसम कायम रख सकेगा या नहीं। क्योकि व्यभिचारियों और नशेबाजोंके विषयमे नित्य ही देखनेमें आता है कि वे अपने बुरे व्यसनोंको त्यागनेके लिए दिनमे छह छह बार कसमे खाते हैं और छह छह बार ही

उन्हे तोड़ते हैं। हमारी समझमे तो अगर कसम खिलानेकी अपेक्षा उनको वारंवार इतना समझाया जाय जिससे उस बुरी आदतके दोष उनके हृदयमें जमकर उससे उनको पूरी पूरी ग्लानि हो जाय और साथ ही कई दिनतक उस आदतके छुड़ानेका उनको अभ्यास भी कराया जाय, तो वह बुरी आदत छूट सकती है, नहीं तो केवल कसम खिलानेसे कुछ नहीं होता बल्कि उससे और भी अधिक ढीटपन आ जाता है। इसके सिवा दुनियामे हजारों लाखों ऐसी बातें है कि जिनसे बचनेकी मनुष्यको जरूरत पड़ती है। ऐसी हालतमें वह बेचारा किस किसके त्यागकी कसम खाय और किस किसकी याद रखकर उसे निभावे। अतएव मनुष्यको सदैव अपनी विवेकशक्तिसे काम लेना चाहिए कि जिससे वह सदैव सब प्रकारकी बुराइयोंसे बचता रहे। इसके अतिरिक्त बहुतसी बाते ऐसी हैं जो किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसरपर तो बुरी होती है, और किसी समय, किसी अवस्था और किसी अवसर पर अच्छीं। इस कारण कसम खानेसे कैसे काम चल सकता है? यही नहीं, वरन् ऐसा करनेसे मनुष्यकी विचारशक्ति भी अपना काम छोड़कर शिथिल और कमज़ोर बन जाती है।

परन्तु इन नशोंके विषयमें सबसे बड़ी कठिनाई तो यह आ पड़ी है कि हमारे देशके अध्यात्मरसके रसिक योगाभ्यासी और आत्मध्यानी साधु-संत बहुत करके इन नशोंको ही मोक्ष जानेकी सबसे उत्तम सवारी समझते हैं और इसी कारण वे दिन भर भंग पीने और गाँजे या चरसकी दमें उड़ानेमे ही लगे रहते है। नशा करनेके सिवा वे अपना और कोई काम ही नहीं समझते हैं। नशेकी घुमेरसे दिमागमें चक्कर आते रहने और घर आसमान सब कुछ घूमता हुआ नज़र आनेसे ये अन्तर्यामी और महाज्ञानी लोग यही समझते हैं कि हम बहुत तेज़ीके साथ मोक्षकी तरफ उड़े जा रहे है और

एक एक क्षणमे हजारों मीलका सफर तय कर रहे हैं; यह आकाश और धरती हमको ऐसी घूमती हुई नजर आती है जैसे कि रेलमें बैठनेसे आसपासकी धरती और वृक्ष घूमते हुए दिखाई देते है। यही कारण है कि गृहस्थ लोग भी इन नशेबाज फकीरोको 'पहुँचा हुआ' समझते है, उनसे भूत-भविष्यत्की बाते पूछते और उनके वचनोको पत्थरकी लकीर समझते है। यही नहीं, वे उनकी शक्तिको ईश्वर या प्रकृतिकी शक्तिसे भी अधिक मानकर उनसे ईश्वर या प्रकृतिके विरुद्ध काम करा लेनेकी आशा रखते हैं और इसी लालचसे उन्हे नशेकी चीजे भेट किया करते है।

ये परोपकारी साधु सन्त इन मोक्षदायक नशोको अकेला ही सेवन करके स्वार्थी नहीं बनना चाहते, बल्कि इनके उत्तम उत्तम गुण बतलाकर बड़ी बड़ी महिमाये गाकर, बड़े आग्रहके साथ अपने श्रद्धालुओको भी चखाते है और धीरे धीरे उनको भी नशोंका अभ्यास कराके मोक्षपथ पर ले जाते है।

इन मोक्षमार्गी साधुओकी देखादेखी गृहस्थोके धर्म्मगुरु ब्राह्मण-लोग भी शायद इसी भयसे नित्य भंगका लोटा चढ़ाया करते है कि नशा नहीं करेगे तो मोक्ष तो क्या शायद स्वर्गमें भी घुसनेके अधिकारी नहीं रहेगे। इसके सिवा वे भंगको अपने महादेव पर भी चढ़ाते है और ऐसा करके मानो वे इस बातका डंका बजाते है कि जो कोई इस नशेको बुरा कहेगा वह मानो देवताकी प्यारी वस्तुका अपमान करेगा और इस प्रकार देवताका कोप-भाजन बनकर अपना ही सर्वनाश कर लेगा। इसके सिवा अध्यात्मचर्चाके केन्द्रस्थान और मोक्षमार्गके एकमात्र अधिकारी इस परम पवित्र भारतवर्षमे ऐसे देवता भी निवास करते है जो शराबसे ही खुश होते है और इस लिए उनपर खूब ही शराब चढ़ती है और उनके पुजारियोंको वह कुछ भी नशा नहीं करती है। यही कारण है कि वे उसे पानी-

की तरह पीते हैं और भीतरके कपाट खोलकर भूत-भविष्यत्की सब बातें बतलाने लग जाते है ।

पाश्चात्यदेशनिवासी यूरोपियन आदि जड़वादी तो शराबके सिवा और कोई दूसरा नशा ही नहीं जानते है । वे शराब भी केवल इसी लिए पीते है कि उनके अत्यन्त ठंडे देशोमे—जहाँ बारहों महीना बर्फ जमा करती है और ठंडके कारण हाथ पैर हिलाना भारी हो जाता है—यह शराब बदनमें गरमी लाती, खूनके प्रवाहको तेज करती और मनुष्यके उत्साहको बढ़ाकर उसे कार्यक्षम बनाती है । परन्तु अध्यात्मरसके रसिक भारतवासियोंने इस विषयमे उनसे विशेष शोध की है । ये कहते है कि हिन्दुस्तान जैसे अत्यन्त गरम देशमे इन नशोंके पीनेसे मनुष्यको बहुत दूरकी सूझने लगती है और उसकी आत्मा परम पवित्र होकर शीघ्र ही परमात्म पदको पा लेती है । इसी लिए भारतवर्षके अध्यात्मवादियोने अपने ज्ञानचक्षुओंसे नशेकी बीसो चीजें ढूंढ़ निकाली है, जिनके द्वारा वे शीघ्र ही मोक्षमार्गको तय कर लेते हैं और वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही सत् चित् आनन्दमे लय हो जाते हैं—अनन्तकालतक परमानन्दमें मग्न रहते है ।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य देशोंके जड़वादियोंने जड़ पदार्थोंके गुणोकी खोजमे नशेको हानिकारक जानकर उसे त्यागना शुरू कर दिया है और अमेरिका जैसे ठंडे देशमें भी शराबका पीना राजाज्ञा द्वारा बन्द कर दिया गया है । परन्तु वे सब म्लेच्छ देश हैं, इस कारण इन अध्यात्मवादियोंके कथनानुसार वहाँ इस प्रकारके जितने उलटे कार्य्य हो—सब थोड़े हैं । परन्तु इस परम पावन भारतदेशमे ऐसा नहीं हो सकता है, बल्कि यहाँ अन्य सब नशोंके साथ साथ शराबका पीना भी हदसे ज्यादह बढ़ता जाता है । पचास वर्ष पहले जिस स्थान पर शराबकी बिक्रीका ठेका सौ रुपयेमें होता था वहाँ अब वह कई कई हजार रुपयोंमे होने लगा है और साल दर साल

बढ़ता ही चला जाता है। हरिद्वार आदि तीर्थोंपर इस शराबकी बिक्री इतनी अधिक होने लगी है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि शराब जैसे उत्तम पदार्थके गुणोंको पश्चिमके जड़वादी ज़रा भी नहीं पहिचानते हैं, इसीलिए वे इसको अपनी अज्ञानताके कारण त्यागने लगे है, परन्तु भारतवर्षके अध्यात्मवादी शराबके आध्यात्मिक गुणोंको भलीभाँति जानते है और इसीलिए वे रातदिन इसका प्रचार अधिकाधिक बढ़ाते चले जा रहे हैं।

यह अध्यात्मवादी भारत नशैली चीजोंकी खोजमे इतना निपुण हो गया है कि पश्चिमदेशवासियोंने अपनी जड़बुद्धिसे जो 'कोकेन' नामी एक ऐसी ओपधि निकाली है जिसके लगाते ही शरीर शून्य हो जाता है और इस कारण चीरफाड़मे आसानी हो जाती है, उसमे भी उसने अपने ज्ञानचक्षुसे नशेका गुण पहिचान लिया है और उसे नशेके रूपमे इस्तैमाल करना प्रारंभ कर दिया है। यद्यपि गवर्नमेण्टने उसे बहुत हानिकारक और विषाक्त समझकर उसका खाना अपराध ठहराया है और जिसके पास एक रत्ती भर भी कोकेन मिल जाती है उसे दंड दिया जाता है, परन्तु अध्यात्मवादी भारतने इसका जो गुण पहिचाना है वह जड़वादी पश्चिम क्या जाने! इसीलिए भारतवासी अब भी अनेक गुप्त रीतियोंसे इसे मँगाते और लाखों करोड़ों रुपयोंकी (कोकेन) खा जाते है।

ऐसी दशामे बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी अब तक हमारी समझमें यह नही आया है कि हिन्दुस्तानमे नशेको बंद करनेका क्या उपाय किया जाय-सिवाय इसके कि जो लोग नशेको बुरा समझते हैं वे ऐसे अध्यात्मवादियोंसे दूर रहकर स्वतः नशा करना छोड़ दे और उसकी बुराइयोंको जोरशोरके साथ लोगोंपर प्रकट करे।

तमाखू खाना, पीना, सूंघना आदि छोटे छोटे नशे यद्यपि मनुष्यको साक्षात् पागल नहीं बनाते हैं तथापि वे शरीरको बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इसके सिवा इन छोटे नशोंसे भी लाभ तो कुछ होता नहीं हैं उलटे आदत पड़ जानेपर उनसे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इस लिए छोटा बड़ा कोई भी नशा नहीं करना चाहिए और किसी खास वस्तुकी आदत न डालकर स्वच्छन्दताका उपभोग करना चाहिए।

नशेसे दूसरे दर्जेपर मनुष्यके गले पड़ जानेवाले वे खेल हैं जिनमें हार-जीत होती है या मान कषाय भड़कता है। इन खेलोंमें भी वे खेल अधिक रुचिकर होते है और उनकी आदत भी जल्दी पड़ जाती है जिनमें मेहनत कम करना पड़ती है और बैठे बैठे ही हार-जीत हो जाती है। कुश्ती, कबड्डी, गेंदबल्ला, घुड़दौड आदि ऐसे कई प्रकारके खेल हैं कि जिनमे शारीरिक मेहनत भी खूब होती है और हार-जीत भी हो जाती है। यदि मनुष्य इन खेलोंको ऐसी सावधानीके साथ खेले कि जिससे उसके शरीरकी मेहनत तो हो जाया करे परन्तु उनकी अधिक लत न पड़ने पाय, तो ये खेल उसके लिए बहुत लाभकारी हैं। परन्तु मनुष्य यदि इन खेलोको इतना अधिक खेलने लगे कि जिससे उसके जरूरी कामोंमें विघ्न पड़ने लगें तो ये वर्जिशके खेल भी हानिकारक और त्याज्य हो जाते हैं। रहे वे खेल जिनमे हार-जीत तो होती हैं परन्तु शरीरको कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती—जैसे कि सतरंज, गंजफा, ताश, चौपड़ आदि। सो ये खेल कार्य्यकारी तो कुछ भी नही होते, केवल दिल बहलानेके लिए खेले जाते हैं। यदि मनुष्य इनके बजाय अपने खाली समयको नई नई पुस्तकें पढ़ने, नई नई बातें सीखने या नई नई कारीगरीके काम करनेमे लगावे तो उसे अनेक प्रकारके हुनर आ जायँ और उसकी विशेष उन्नति हो जाय। इन कामोंके द्वारा

उसे समय वितानेकी चिन्ता न करना पड़े और कामके साथ साथ उसका दिल-बहलाव भी हो जाया करे। हिन्दुस्तानको तो खास तौरपर इन वातोंकी जरूरत है। क्योंकि यहाँ कारीगरीकी बहुत कमी है और समय भी खूब मिलता है। यदि कभी कभी इन खेलोंके द्वारा अपना दिल वहला लिया जाय तो हर्ज नहीं है; किन्तु इस बातका भय अपने हृदयमे अवश्य रखना चाहिए कि बारबार खेल-नेसे इनकी आदत न पड़ने पावे। क्योंकि आदत पड़ जानेपर उसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है और जरूरी कामोंमे बाधा पहुचने लगती है। यहाँपर एक वड़ीभारी कठिनाई तो यह है कि यहाँके अध्यात्मवादी कारीगरीके कामोको अत्यन्त नीच समझते है, इस लिए वे कारीगरीके कामों द्वारा अपना दिलवहलाव कैसे कर सकते हैं? वे तो ज्ञान-चौसर बिछाते हैं या स्वर्गमोक्षकी बाजी लगाते हैं और इसीतरह अपना सारा समय विताया करते है। यही नही, वे अपने धनको जड़ पदार्थ मानकर कारीगरी करनेवाले देशोंमें पहुं-चाते जाते है और आप दिनपर दिन अकिञ्चन तथा अपरिग्रही बनकर आनन्दके तार बजाते और जड़वादियोकी निन्दा करके फूले अंग नहीं समाते हैं।

हार-जीतवाले खेलोंमे वे खेल सबसे बुरे हैं जिनमें जबानी हार-जीत काफी नहीं समझो जाती है, बल्कि हार-जीत होने पर कुछ लिया दिया भी जाता है। ऐसे खेलोंमे मान कषायके साथ साथ लोभ-वृत्ति भी भड़कती है और इसी लिए उनकी आदत भी शीघ्र पड़ जाती है। यह आदत कुछ दृढ़ हो जानेपर फिर टाले नहीं टलती है और दिनपर दिन अधिकाधिक प्रवल होती जाती है। ऐसे ही खेलोंको जुआ कहते है। जुआ खेलनेवाले बहुत नीच प्रकृतिके हो जाते हैं और सब तरहके बुरे काम करने लगते हैं, क्योंकि इन खेलोंकी हार-जीतसे कषाय बहुत भड़कता है और उसे एक बार

फिर खेलनेके लिए विवश करता है। कहनेका मतलब यह है कि यह उत्तेजन उसे बावला बना देती है। जब जुआ खेलनेके लिए पासमें द्रव्य नहीं रहता है तब उसकी चाट उसे अनुचित रीतिसे द्रव्य लानेको उसकाती है और जीतमें जो बिना मेहनत किये ही हरामका माल मिल जानेके कारण उसका चित्त उसे बुरे बुरे कामोंकी ओर झुकाता है और उसे नीचातिनीच बना देता है। इस कारण जिस खेलकी हार-जीतमें एक फटी कौड़ी भी देना पड़ती हो उसे कभी भूलकर भी नहीं खेलना चाहिए। यही कारण है कि सरकारने भी जुएके खेलको अपराध ठहराया है और उसके खेलनेवालेको दण्ड दिया जाता है। परन्तु इसमें भी यह कठिनाई पड़ गई है कि भारतवर्षके अध्यात्मवादी दीवाली आदि त्योहारोंमे अन्य व्रत उपवासोंके साथ साथ जुएका खेलना भी महा धार्मिक और अत्यावश्यकीय कार्य्य समझते हैं, और इसी लिए वे कानूनकी कुछ भी परवा न करके खूब जुआ खेलते और मोक्ष जानेकी अपनी मंजिलको आसान बनाते हैं। इस परम पावन भारतवर्षके आत्मज्ञानी साधु-संत भी अपने ज्ञानचक्षुके द्वारा सट्टे आदिके अंक बतलाते और इस प्रकार धर्मात्मा गृहस्थोंको जुआ खेलनेमें अनेक सुविधायें पहुँचाते हैं। वे उद्योग धंदेके द्वारा पैसा कमाना जड़वादियोंका कार्य्य बतलाकर उनकी खूब हँसी उड़ाते हैं, साथ ही हिन्दुस्तानियोंको बिलकुल बेकार, महादरिद्री और एक जरासी सुई तकके लिए दूसरोंका गुलाम बनाकर अध्यात्मरस चखानेमें जरा भी नहीं शरमाते हैं।

कठोर हृदयवाले मनुष्योंके लिए शिकार भी ऐसा दिलबहलाव या मनोरंजन है कि जिसकी बहुत शीघ्र लत पड़ जाती है और इसके शौकीन बंदूकको कंधेपर रखकर और बाज शकरू आदि महान् हिंसक पक्षियों तथा शिकारी कुत्तोंको साथ लेकर जंगलोंमें मारे मारे

फिरते हैं, भूख–प्यास, सर्दी–गरमी सब कुछ सहते हैं, सैकड़ों रुपया खर्च करते हैं और जब दो एक हरिण या दस बीस चिड़ियाँ मार लाते हैं तब बहुत ही खुशी मनाते है। उनकी खुशीका कारण यह है कि जब जानवर अपनी जान बचानेके लिए उनके आगेसे भागता है और वे उसका पीछा करके उसे जा दबाते है तब वे इसको अपनी भारी विजय समझते है। इसके सिवा शिकारीकी गोली लगनेसे जब जानवर तिलमिलाता है, उछल-कूद करता है, भागना चाहता है परन्तु उससे भागा नहीं जाता है, तब वह शिकारी अपनी बहुत भारी फतह मानता है और अपनी शिकारको तड़फते देखकर फूले अंग नहीं समाता है। परन्तु यह दिलबहलाव या मनोरंजन मनुष्यके हृदयको बहुत कठोर बना देता है जिससे उसकी सुख-शान्तिमे बहुत फ़र्क पड़ जाता है।

जो मनुष्य हैं उनके लिए तो यही उचित है कि वे अपने हृदयको कठोर न बनने दें और सब जीवोंके साथ प्रेमभाव रखकर अपने मनकी सुख-शान्तिको बढ़ावे। क्यों कि ऐसा करनेसे ही परस्पर प्रेम और सहानुभूति बढ़ती है और सर्वत्र आनन्द मंगल फैलता है। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि इस समय मनुष्योंका पहले जैसा क्रूर स्वभाव नहीं रहा है। लड़ाईमें हाथ आये हुए शत्रु न तो अब भून भूनकर खाये जाते हैं, न युद्धमे पकड़े हुए या जीते हुए स्त्री-पुरुष गुलाम बनाये जाते है और न वे पशुओंकी तरह बाजारोंमें ही बेचे जाते हैं; बल्कि उनके साथ अब दयाका बर्ताव किया जाता है और उनसे किसी प्रकारका अमानुषिक कार्य नहीं लिया जाता है। पहलेके समान अब हाथीके पैरतले दबाकर, किसी ऊँचे मकान या पर्वतसे पटककर, कुत्तोसे नुचवाकर, कोल्हूमे पेलकर, आरेसे चीरकर, तेलके खौलते हुए कढ़ाहेमें डालकर,

सारे बदनमे सुइयाँ चुभोकर, मिमयाई* बनाकर, जीतेजी खाल खिंचवाकर, आँखे निकलवाकर या दीवाल आदिमे चुनवाकर अपराधियोंके प्राण नहीं लिए जाते हैं और न किसी एकके अपराध परसे उसके समस्त कुटुम्ब और बालबच्चोको ही सजा दी जाती है। शूलीकी सजा भी बंद हो गई हैं और उसके बजाय फाँसीकी सजा जारी की गई है कि जिसमे दो तीन मिनटमे ही जान निकल जाती हैं। अब पहलेके समान छोटे छोटे अपराधोपर न तो फाँसी ही दी जाती है और न हाथ पैर ही कटाये जाते हैं, बल्कि अब जहाँ तक हो सकता है ऐसी कोशिश की जाती है कि जिससे अपराधी थोड़ी सजामे समझ जाय और फिर वह अपराध न करे। इसी लिए आजकल जैलखानोमे पहलेके समान बेपरवाही और सख्ती नहीं की जाती है, बल्कि कैदियोकी तनदुरुस्ती और सुविधाओंकी ओर पूरा पूरा खयाल रक्खा जाता है। आजकल किसीको दोषी या निर्दोषी जाननेके लिए उससे धधकती हुई आग या खौलते हुए तेलमें कूद पड़ने या हाथ डालनेके लिए नहीं कहा जाता है। इसी प्रकार अन्य कोई भयंकर अप्राकृतिक परीक्षा भी नहीं की जाती है। अब तो जहाँतक बनता है बिलकुल साधारण रीतिसे अपराधोके जाँचनेकी चेष्टा की जाती है और इस कामको सम्पन्न करनेके लिए संदिग्धको किसी प्रकारकी तकलीफ या धमकी नहीं दी जाती है।

इसी प्रकार अब इस देशके उच्च जातिके लोग पहलेके समान अपनी कन्याओको गला घोटकर नहीं मारते हैं और न विधवा

---

* प्राचीन समयमें अच्छे मोटे ताजे जीवित मनुष्योंको खौलते हुए तेलके कढ़ाहेके ऊपर इस तरह औंधा लटका देते थे कि जिससे किये हुए नस्तरके घावसे एक एक बूद खूनकी उस कढ़ाहेमें टपकती रहे। इस प्रकार उसके समस्त शरीरका खून टपक कर तेलमें पकनेसे जो वस्तु तैयार होती थी वह 'मिमयाई' कहलाती थी और घाव वगैरह भरनेके काम आती थी।

स्त्रियोको मृतक पतिके शवके साथ ही जलाते है। इसमे भी कोई सन्देह नहीं है कि अब पहलेके समान सुन्दरी स्त्रियों और कन्याओके छीननेके लिए भारतीय वीरोके लश्कर नहीं चढ़ते हैं और न अब ऐसी बातोंके लिए हजारो लाखों योद्धाओके सिर कटाये जाते हैं। प्राचीन समयमे स्वयंवर जैसी पवित्र रीतिसे वर-निर्व्वाचन करनेमें भी तलवारे चलती थीं और जिसके गलेमें कन्या जयमाला पहिनाती थी उसके साथ लड़नेके लिए सब लोग तैयार हो जाते थे। कहनेका मतलब यह है कि पहले बात बात पर खून खराबी होती थी और यही मनुष्यका धर्म्म समझा जाता था।

परन्तु अब मनुष्योंने बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर ली है, इस लिए अब ऐसी बातोंके लिए लड़ना या युद्ध करना बड़ी शरमकी बात समझी जाती है। इस प्रकार मनुष्यजातिमे बहुत कुछ शान्ति बढ़ती जाती है, तथापि अभी तक मनुष्योंने पूर्णरूपसे मनुष्यत्वको ग्रहण नहीं किया हैं और न कठोरता तथा निर्दयताको ही पूर्णरूपसे त्यागा है। यही कारण है कि अब भो बहुतसी बातोमे पहलेकी तरह युद्ध होते है और नर-संहारको शीघ्रता तथा दक्षताके साथ करनेके लिए बड़े बडे भयानक यत्र निकाले जाते है। इस लिए यह संसार अभी तक बहुत दुःखमय बना हुआ है और उसमे पारस्परिक सहानुभूति तथा विश्वबन्धुत्वका प्रचार नहीं हो सका है। इसके विपरीत अभी मनुष्य मनुष्यका शत्रु बनकर खूब उत्पात मचाता है और इसके परिणामसे अनेक प्रकारकी अशान्ति और दुःखोंकी उत्पत्ति होती है।

मनुष्य इसी सहृदयताके अभावके कारण मेढ़े, मुर्गे, तीतुर, बटेर आदि अनेक पशु-पक्षियोको आपसमें लड़ाता है और ज्यो ज्यों वे पशु-पक्षी लड़ लड़ कर और नोंच नोचकर एक दूसरेको घायल करते हैं त्यो त्यों वह खुश होता है। यह सच है कि पहले जमानेमें मनुष्य भी इसी तरह लड़ाये जाते थे और एक दूसरेको घायल करते देख-

कर दर्शकगण बहुत खुश होते थे। उन दोनोमेसे जब तक एक मर नहीं जाता था तब तक वे हटने नहीं दिये जाते थे। यद्यपि अब ऐसी कठोरता नहीं की जाती है और न वह राजनियमानुसार ही विधिसगत समझी जाती है, तौ भी मनुष्यमे अब भी इतनी कठोरता अवश्य बाकी है कि वह मनुष्योका आपसमे बैर करा कर खुश होता है और भाई-भाईमे, बाप-बेटेमे तथा पति-पत्नीमे लड़ाई करा देता है और ज्यों ज्यो लड़ाईकी आग भड़कती है त्यो त्यो वह आनन्द मनाता है। इसी प्रकार अब मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिके लिए नदीमे डूब मरने, हिमालयमें जाकर गलने या करौतसे कटकर मरजानेका उपदेश नहीं दिया जाता है और न देवताओकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए नरबलि ही चढाई जाती है, परन्तु देवताओके नाम पर पशुओको मारना अभी तक जारी है। आजकल आत्मघात करना पाप समझा जाने लगा है, तौ भी महीनो तक भूखे रहना, गरमीके दिनोमे आग तपना या धूपमें बैठना, जाड़ेमे पानीमे डूबे रहना, औंधा लटकना, निरतर खड़े रहना, काटोंपर सोना, समाधि-ले लेना आदि अनेक घोर शारीरिक कष्ट मोक्षप्राप्तिके साधन माने जाते है और इन काय-कष्टोको सहन करनेवाले व्यक्ति खूब ही पूजे जाते है।

मनुष्योका यह कठोर व्यवहार और घोर दुःख तभी दूर हो सकता है जब वे अपने हृदयको नरम बनानेकी कोशिश करें, और उनका हृदय नरम तभी हो सकता है जब वे पशुपक्षियोसे भी प्रेमका व्यवहार करना सीखे, अर्थात् शिकार आदि निर्दयता-पूर्ण कामोंको छोड़ कर समताका वर्ताव करे।

मनुष्योको इद्रियोके विषय-भोगकी भी आदत पड़ जाती है जो कि पीछेसे बहुत दुःखदायक प्रतीत होती है। इस लिए मनुष्योंको अपनी इन्द्रियोंकी देखरेख रखनी चाहिए और किसी बातकी आदत

न पड़ने देना चाहिए, वल्कि हर समय अपनी विवेकबुद्धिसे काम लेकर सदैव स्वाधीनतापूर्वक कार्य्य करना चाहिए। इन्द्रियोंके विषय-भोगकी आदतोमे जीभके चटोरपन और काम सेवनकी आदत बहुत जल्द पड़ जाती है और वहुत कुछ उलटे-पुलटे नाच नचाने लगती है। इस लिए इन दोनों वातोंसे बहुत सावधान रहना चाहिए, अर्थात् इनको कभी सीमाके बाहर न बढ़ने देना चाहिए। चटोर-पनकी आदतमे भोजनमें मिरच मसाले आदि डालकर चटपटा बनानेकी आदत भी ऐसी है जो नशेकी तरह दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। यदि किसी समय खानेमें मिरच मसाले न हों तो वह खाना ही नहीं खाया जाता है। मिरच स्वास्थके लिए बहुत हानिकारक है, इस लिए मिरचको कदापि नहीं खाना चाहिए और यदि वह कभी खाई भी जाय तो उसकी आदत हर्गिज न पड़ने देना चाहिए। जिन लोगोंको एकबार भी मांस खानेका मौका मिल जाता है उनकी जीभको इसका बड़ा चसका लग जाता है और फिर उनके लिए इसका पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। मांस खाना मनुष्यको किसी भी तरह शोभा नहीं देता है। क्योकि इस मांसको सौम्य हृदयवाले पशुपक्षी भी तो नहीं खाते हैं। इसे शेर भेड़िया आदि वे ही जीव खाते हैं जो महान् क्रूर, निर्दय और हिंस्र स्वभावके होते हैं। ऐसी दशामे यदि मनुष्य मांस खाता है तो यही समझना चाहिए कि वह भी उन्हीं जैसा क्रूर, निर्दय और हिंस्र है। इसमें संदेह नहीं है कि एक समय ऐसा था जब आफ्रिका आदि देशोंके मनुष्य मनुष्यतकको मारकर खा जाते थे और इस पवित्र भारतदेशमे भी नरभक्षक मनुष्य निवास करते थे—जिन्हे राक्षस कहते थे। परन्तु अब सभी देशोके मनुष्योने सभ्यतामें इतनी उन्नति कर ली है कि वे नरमांसको खाना अपने मनुष्यत्वके विरुद्ध समझते है। परन्तु मनुष्यकी उन्नतिमें अब तक यह कसर बनी हुई है कि वह पशु-

पक्षियोंका मांस खाता है। जब उसके हृदयसे यह कठोरता भी निकल जायगी तभी कहा जा सकेगा कि उसने पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसी अवस्थामें ही पूर्णशान्ति स्थापित हो सकेगी और मनुष्य मनुष्यमात्रका बन्धु बनकर सर्वत्र आनन्द फैला सकेगा। यह सच है कि इस समय भी अनेक लोग मांस नहीं खाते हैं और यूरोप आदि देशोंमें भी मांसका खाना कम होता जाता है। मांस खानेसे अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है और इसी लिए मांसाहारी लोग भी अब उसके दुर्गुणोंसे परिचित होकर उसे त्यागने लगे हैं। परन्तु इस परमपवित्र भारतदेशमें जहाँ देवताओंके लिए मांसका चढ़ाया जाना जरूरी बतलाया जाता है और जहाँ श्राद्ध जीमनेवाले ब्राह्मणोंके लिए इसका खाना लाजिमी कहा जाता है, वहाँ इसका छूटना बहुत मुश्किल है। अतएव यहाँ पर मांसाहार छुड़ानेके लिए बहुत भारी प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। परन्तु यह प्रयत्न तभी कार्य्यकारी हो सकता है जब लोगोंके हृदयसे धार्मिक पक्षपात हट जाय और वास्तविक विचारप्रणाली प्रतिष्ठित हो।

७—काम-वासना।

इन्द्रियोंके विषयभोगोंमे सबसे प्रबल और अधिक उद्धत कामवासना ही है कि जिसकी इच्छा उत्पन्न होते ही मनुष्य अपनी सारी सुधबुध खोकर उन्मत्त बन जाता है। विशेष करके कमजोर आदमियो पर इसका खूब जोर चलता है और वह उनको अपने काबूमे करके खूब नाच नचाती है। इसी लिए सभ्य मनुष्योने यह रीति निकाली है कि कामेन्द्रिय सदैव छिपाकर ही रक्खी जावे और उसका नाम भी न लिया जाय, जिससे हरवक्त उसकी याद आकर मनमे भड़क पैदा न हो। विवाहकी प्रथा भी मनुष्योमें इसी गरजसे जारी की गई है कि अपनी काम-वासना पूर्ण करनेके लिए एक पुरुषके लिए एक स्त्री. और एक स्त्रीके लिए एक पुरुष मुकर्रर हो जाय और एक ही स्त्रीपर अनेक पुरुषोका झगड़ा होकर खून-खराबा न होने पावे। एक समय था जब विवाह-प्रथा जारी रहने पर भी—इस विषयमे बहुत झगड़े हुआ करते थे और महा अशान्ति छाई रहती थी,

उस समय यह भारतवर्ष हजारो छोटे छोटे राज्योमे बँटा हुआ था। प्रत्येक राजा हजारो स्त्रियोके साथ विवाह करता था और अपनी सारी उम्र स्त्रियोके व्याहनेमे ही गँवाता था। जहाँ कहीं सुन्दरी स्त्रीका नाम सुन पाता था वहीं पर अपनी सारी सेना लेकर चढ़ाई कर देता था और हजारो मनुष्योंके सिर कटवा कर—खूनकी नदियाँ बहाकर जिस तरह हो सकता था उसे लेकर ही आता था। इसी कारण उस समय राजालोग प्रायः ऐसी ही लड़ाइयाँ लड़ते थे और वीर क्षत्रिय भी इसीमे अपनी बहादुरी समझते थे। चाहे कितने ही आदमी घास—फूसकी तरह क्यों न कट जायें परन्तु अपने स्वामीको

नवीन नवीन सुन्दरी स्त्रियाँ लाकर देना ही चाहिए-यही उस समयकी राजभक्त सेनाकी कर्त्तव्यनिष्ठा थी। यही कारण है कि उस समय बड़ी अशान्ति छाई रहती थी और घरमें कन्याका जन्म होना महान् दुर्भाग्य समझा जाता था। क्योंकि जब एक कन्याको दस बलवान् पुरुष मॉगते हों और दसों दलबलसहित उसे लेनेके लिए चढ़ आते हो तो ऐसी हालतमे बेचारे कन्यावालेकी कहाँ तक खैर रह सकती है। उसके सिरपर उस समय महान् विपत्ति आ पड़ती थी और उसके दरवाजेपर सैंकड़ो मनुष्योंके सिर कट जाते थे, तब कहीं वह कन्या किसी एकके हाथ लगती थी और उसीके साथ उसका विवाह होता था। उस समय इन झगड़ोंसे बचनेके लिए लोगोंने स्वयंवरकी प्रथा निकाली थी, अर्थात् कन्या जिसे पसंद करे उसीके साथ उसका विवाह हो जाय। परन्तु उस समयके पराक्रमी पुरुषोंने स्वयंवरमे भी दंगा मचाना शुरू कर दिया और किसी एकके गलेमे जयमाला डाल देने पर भी उस स्त्रीको छीन लेनेके लिए जोर जुल्म होने लगा। इस प्रकार स्वयंवरकी पवित्र भूमि रणचण्डीका क्रीड़ा-स्थल बनने लगी और वहाँ हर्ष तथा मांगलिक कृत्योंकी जगह शोक-विषाद, मार-काट तथा लाशोका भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा। जब इस तरह यह स्वयंवरकी रीति भी कामयाब नहीं हुई तब उच्च जातिके लोगोने लाचार होकर कन्याओंको पैदा होते ही मार डालनेकी रीति चलाई।

उस समयके राजाओको नित्य नई नई नवयौवना स्त्रियोके साथ विवाह करते रहने पर भी वेश्याये रखनेकी आवश्यकता पड़ती थी। बहुत करके पंखा झलने और चँवर ढोरनेके लिए वेश्याएँ ही रक्खी जाती थीं। वेश्याएँ नित्य दरबारमे आँखोंके सामने रहतीं और युद्धमें भी साथ जाती थीं। इनका काम सदैव मनोरंजन करना था। यह छोटे छोटे राजाओका हाल था, बड़े बड़े महाराजा तो हजारो रानियाँ

रक्ते थे और इतने पर भी वेश्याओंसे दिल वहलाते थे। क्या यह आश्चर्यकी वात नहीं है कि जिन शूद्रों और म्लेच्छोंकी परछाईं पड़नेसे भारतके धर्मात्मा अपनेको अपवित्र समझते थे उन्हींकी सुन्दरी कन्याओंको खुशीसे अपने घरमें डाल लेते थे और अपने रनवासकी शोभा बढ़ाते थे*। उस धर्म्मयुगमे विवाहके सिवा व्यभिचारकी भी बहुत प्रवृत्ति वतलाई जाती है। कहा जाता है कि बलवान् राजा अपने अधीन राजाओंकी सुन्दर रानियों और प्रजाकी खूबसूरत स्त्रियोंको छीन मँगाते थे और वेचारी निर्वल प्रजा चूंतक नहीं करते पाती थी। हिन्दूपुराण तो इस व्यभिचारका यहाँतक पता वतलाते हैं कि वड़े वडे देवता और ऋषि महर्षि भी इस व्यभिचारसे नहीं वचे थे!

जो हो, परन्तु इस कलियुगमे लोगोंने इस विषयमें बहुत कुछ सुधारणा कर ली है। पाश्चात्य देशोंमें छोटेसे छोटे गरीवसे लेकर वड़ेसे बड़े चक्रवर्ती सम्राट् तक एकाधिक स्त्री नहीं रख सकते हैं। इन्हीं जड़वादी पाश्चात्योके संसर्गसे कहिए अथवा समयके फेरसे कहिए, भारतके वड़े वडे सेठ साहूकार और जमीनदार लोग भी अव एक ही एक स्त्रीपर संतोष करने लगे है और जो एकाधिक स्त्रियॉ विवाहते हैं वे निन्दाके पात्र वनते है। यद्यपि भारतके राजा महाराजा प्राचीन धर्मयुगकी देखादेखी अव भी कई कई विवाह करते है और वेश्याये भी रखते हैं, परन्तु वे पहलेके मुकावलेमें वहुत थोडी होती हैं, और धीरे धीरे उनकी गिनती कम होती जाती है। वल्कि कोई काई राजा भी अव एकाधिक विवाह करना और वेश्याओका रखना वुरा समझने लगे हैं। जो राजा महाराजा एकाधिक विवाह करते हैं वे भी पहलेके समान चढ़ाई करके नहीं, किन्तु राजीखुशीसे करते है। इस तरह अव काम-

* जैनधर्मके पुराणोंके अनुसार चक्रवर्ती राजाकी रानियोंकी संख्या ९६००० होती थी और उनमें ३२००० म्लेच्छकन्यायें होती थीं।

वासनाकी प्रबलताके कारण पहलेके समान न तो खून-खराबा ही होता है और न अशांति ही फैलती है, परंतु कुछ दूसरे कारणोंसे अब भी लोगोंकी कामतृष्णा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इस लिए आज भी सब लोग इसके फंदेमें वैसे ही फँसे हुए हैं जैसे कि पहले फँसे थे और अधिक विषय-भोग, वेश्यागमन, परस्त्री-सेवन, हस्तमैथुन, बच्चेबाजी आदि अनेक बुरी लतोंके द्वारा अपनेको बरबाद कर रहे हैं। भारतवर्षके लोग जब तक इन बुरी लतोंको छोड़कर अपने ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा नहीं करेंगे, तबतक न तो वे पुरुषार्थी ही बन सकते हैं और न उन्नतिके क्षेत्रमें आगे ही बढ़ सकते हैं। इन बुरी लतोंके कारण वे अपनी विद्याबुद्धि और शारीरिक शक्तिको खोकर दिन पर दिन पतित होते जाते हैं। ऐसी हालतमें सिवा रोने-धोने और दूसरोंकी शिकायत करनेके और वे कर ही क्या सकते हैं?

कामवासनाकी इन बुरी लतोंसे पीछा छुड़ानेके लिए हमारी समझके अनुसार भारतवासियोंको निम्नलिखित उपाय करने चाहिए। जब तक इस बढ़ती हुई कामवासनाकी लपटको रोकनेका उपाय न किया जायगा—जब तक ब्रह्मचर्य्य और वीर्य्यकी रक्षा न की जायगी तब तक यह भारतवर्ष अन्य उपायोंसे कभी नहीं पनप पायगा।

(१) प्राचीन समयमें कन्याओंके जवान होने पर उनके रूप-लावण्य और यौवनको देखकर बलवान् पुरुष उनकी प्राप्तिके लिए लड़ाई दंगे किया करते थे। इस लिए लोगोंने इन झगड़ोंसे बचनेके लिए बिलकुल छोटी उम्रमें अपनी कन्याओंका विवाह करना शुरू कर दिया। अब यह प्रथा इतनी लोकरूढ़ और दृढ़ हो गई है कि इसके अनुमोदनमें अनेक धार्मिक आज्ञायें तक प्रचलित हो गई हैं। यही कारण है कि यहाँ पर यह प्रथा अब तक चली जा रही है। इस बाल्य-विवाहकी प्रथाके कारण लोगोंका बल-वीर्य्य घट गया है, सब उत्साह और इरादे हवा हो गये हैं, विचारशक्ति मंद पड़ गई है, जीवनशक्ति

नष्ट हो गई है और सब तरहकी उन्नतिका क्रम रुक गया है। छोटी उम्रमें शादी होने और बल-वीर्य्यके घट जानेसे प्राय: सभी स्त्रीपुरुषोमे प्रदर और प्रेमह आदिकी बीमारियाँ फैल गई है। इसी शारीरिक और वीर्यसम्बन्धी निर्बलताके कारण विषयेच्छा बढ़ती जा रही है और वह अनेक निंद्य रीतियोके द्वारा पूर्ण की जाती है। इन्हीं सब कारणोसे आजकलकी सन्तान भी अत्यन्त निर्बल और पुरुषार्थ-हीन उत्पन्न होने लगी है। कहनेका मतलब यह है कि बाल्यविवाह ही इन सब अनर्थोंकी जड़ है—जिसका दूर करना बहुत लाज़मी और ज़रूरी है।

(२) पाश्चात्य देशोमे व्यभिचारका दोष स्त्री-पुरुष दोनोको समान रूपसे लगता है और व्यभिचारी पुरुष वैसा ही निंद्य समझा जाता है जैसी कि व्यभिचारिणी स्त्री। इस लिए वहाँ स्त्री भी अपने पतिपर उसी तरह व्यभिचारका दोष लगा सकती है जिस प्रकार पुरुष अपनी स्त्रीपर लगाते है। परन्तु इस परम पावन भारतवर्षके ऋषि महर्षियोने अपने दिव्यज्ञानसे यह एक परम अद्भुत आविष्कार किया है कि पुरुष तो हजारो स्त्रियोसे विवाह करके, शूद्रो तथा म्लेच्छोकी कन्याओ और स्त्रियोतकको घरमे डालकर, पराई स्त्रियोको छीन कर, खुल्लमखुल्ला व्यभिचारी और वेश्यागामी होकर भी दोषी नहीं होता है, मोक्षप्राप्तिका पात्र बना रहता है; परन्तु स्त्रियाँ एकके सिवा दूसरा पति नहीं कर सकती है। वे अपने ऐसे पतिकी भी भक्त बनी रहनेके लिए बाध्य है जो उक्त सब दोषोसे परिपूर्ण होकर उसका नाम भी न लेता हो और वेश्याओ तथा परस्त्रियोसे अनुरक्त रहता हो। यही नहीं, उन्हें चाहिए कि वे ऐसे कुकर्मी पतिके मरने पर भी उसके साथ जीतेजी जल मरे या उसके नामपर धूनी रमाकर जन्म भर रँड़ापा काटे। ऐसी सहनशील स्त्रीजाति उक्त महर्षियोकी दृष्टिसे अत्यन्त पतित और मोक्षकी अनधिकारिणी है।

उन्हे इतने पर भी संतोप नहीं हुआ, उन्होंने यहाँतक लिख दिया है कि 'स्त्रीचरित्रम् पुरुपस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्रीके चरित्र और पुरुपके भाग्यको देवता भी नहीं जान सकते है, फिर मनुष्योकी तो मजाल ही क्या है।

यही कारण है कि आजकल भी इस देशके उच्च जातीय मोक्ष-गामी पुरुप यद्यपि पहलेके समान शूद्र तथा म्लेच्छोंकी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं डालते है, परन्तु राह चलती चमारियोको छेड़कर और उनसे माँ-बहिनोंकी गंदी गालियाँ सुनकर भी उच्च ही बने रहते है और नीच जातीय वेश्याओंके साथ खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करके भी दोपी नहीं होते हैं। वे अपनी पतिव्रता स्त्रीका सारा गहना उतार उतार कर वेश्याओको अर्पण कर आते है और इतने पर भी त्रिया-चरित्रकी कथायें सुना सुना कर उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते है। इस विषयमे एक तमाशा यह है कि ये पुरुप परमव्यभि-चारिणी स्त्रियो अर्थात् वेश्याओको बिलकुल दोपी नहीं समझते है। वे उन्हें द्रव्यादि देकर अपने मागलिक कामोमे बुलाते और छोटे बड़ो, बूढ़े स्यानों, बिरादरीके मुखियाओ, गुरुजनो, धर्मात्माओ और पडि-तोंको इकट्ठा करके उनके मुंहसे व्यभिचारका उपदेश सुनवाते हैं। व्यभिचारकी अग्निको पूर्णरूपसे प्रज्वलित करनेके लिए इस वैश्या-नृत्यके सिवा और दूसरा कोई उत्तम साधन नहीं है। इसी तरह अनेक मनुष्य व्याह-शादियो,मेलो-ठेलोऔर तीर्थस्थानोंमे पराई स्त्रियोंको घूरने और उनकी चर्चा करनेमे कुछ भी बुराई नहीं समझते हैं. बल्कि उनको अपने काबूमे लाने और उन्हे व्यभिचारिणी बनानेके लिए तरह तरहके प्रयत्न करते हैं। इस तरह जो स्त्रियाँ उनके काबूमें आ जाती है उनकी वे बहुत कदर करते हैं और उनपर आपनी जान-माल निछावर करनेको तैयार हो जाते है। हाँ, अपने घरकी स्त्रियोंका बेशक किसीको पल्ला भी नहीं दिखाया चाहते हैं और इसीलिए

उनपर बहुत कड़ा पहरा रखते हैं। उनके इस व्यवहारका यह मतलब निकलता है कि पुरुषजाति व्यभिचारको बिलकुल बुरा तो नहीं समझती है, परन्तु स्वार्थवश वह इतना अवश्य चाहती है कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही काम आवे। अर्थात् वे चोरोंकी तरह चोरीको तो बुरा नहीं समझते हैं, परन्तु यह जरूर चाहते है कि हम तो सबका माल चुरावे परन्तु हमारा कोई न चुरावे।

पाठकगण समझ गये होंगे कि इस आपापोखीपनसे कैसी गड़बड़ी मचती है, कैसी अशान्ति फैलती है, व्यभिचारकी कितनी वृद्धि होती है और पारस्परिक बुराई फैलकर मनुष्य जातिके सुप्रबन्धमे कितना धक्का लगता है। अतएव मनुष्यजातिकी सुखशान्ति और उन्नतिके लिए यह जरूरी है कि अपनी एक विवाहिता स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीकी ओर कुदृष्टिसे देखने या उससे अनुचित सम्बन्ध रखने पर पुरुष भी उतना ही दोषी समझा जाय जितनी कि स्त्री समझी जाती है और वेश्यानृत्य करानेमें पुरुषजातिपर उतना ही लांछन लगाया जाय जितना कि उस स्त्रीपर लगाया जा सकता है जो स्त्रियोंकी सभा जोड़कर उसमे किसी महाव्यभिचारी पुरुषको नचावे और उससे व्यभिचारके गीत गवाकर आनंद मनावे।

(३) एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे वह न तो सब पर सच्ची प्रीति ही रख सकता है और न सबको अपना हृदय ही दे सकता है। क्योंकि अगर वह ऐसा करना भी चाहे तो एक दिलके टुकड़े नहीं किये जा सकते है। वास्तवमे वह अपनी पाशविक लालसाको पूर्ण करनेके लिए बाहरसे तो सब पर बनावटी प्रीति दिखलाता है परन्तु सच्ची प्रीति एक पर भी नहीं रखता है। इसी तरह उसकी स्त्रियाँ भी उसपर बाह्य प्रेम रखती हैं। चाहे वे लोकलज्जाके कारण उसके मरनेपर उसकी लाशके साथ सती भले ही हो जायँ, परन्तु उस पर उनकी सच्ची प्रीति होना एक तरहसे असंभव ही

है। इसी लिए यह पुरानी कहावत प्रसिद्ध है कि 'त्रियाचरित जाने नहिं कोई, खसम मारकर सत्ती होई।' इसके सिवा एक पुरुष अनेक स्त्रियोंकी कामतृष्णाको पूर्ण भी नहीं कर सकता है। इसी लिए प्राचीन समयमे जब एक एक पुरुष सैकडों–हजारों स्त्रियाँ रखता था, तब उन स्त्रियोंको अनेक कुकर्म करने पड़ते थे और अनेक मायाचार रचने पड़ते थे। ऐसी हालतमे नौकर चाकर, ऊँच नीच जो कोई मिल जाता था उन्हींके द्वारा वे अपनी कामाग्नि शान्त किया करती थीं। यही कारण है कि उस समयके लेखकोने स्त्रीजतिको यहाँतक बदनाम किया है कि व्यभिचार, मायाचार और नीच पुरुषोसे स्नेह करना उनका स्वाभाविक धर्म ठहरा दिया है।

इन सब बातोके अतिरिक्त एक पुरुषकी अनेक स्त्रियाँ होनेसे उनमें कलह और मनमुटाव भी बहुत ज्यादह रहता है और उनकी सौतेली संतान तो प्रायः लड़लड़कर ही मरती है। इसलिए एक पुरुषको अनेक स्त्रियाँ होना अनुचित है। जिस प्रकार स्त्रीको एक पतिके सिवा स्वप्नमे भी दूसरे पुरुषको खयालमे लानेका अधिकार नहीं है, उसी प्रकार पुरुषको भी एक स्त्रीके सिवा दूसरी स्त्रीका खयाल दिलमे लानेका अधिकार न होना चाहिए। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्योंने इस विषयमें पहलेकी अपेक्षा बहुत उन्नति कर ली है और अब बहुधा एक एक स्त्री रखना ही पसंद किया जाने लगा है; परन्तु अब भी इतनी कसर अवश्य बाकी है कि जिस प्रकार एक स्त्री दो पति रखनेका खयाल करनेसे ही महान् पापिनी समझी जाती है उसी प्रकार पुरुष दोषी नहीं समझा जाता है। यही कारण है कि आजकल भी अनेक पुरुष एकाधिक स्त्रियोसे विवाह कर लेते है और इस प्रकार वे एकपत्नीव्रतको भंग करते है। अतएव स्त्रियोंके समान पुरुषोके लिए भी ऐसा ही कडा नियम बनानेकी आवश्यकता है, जिससे वे एकाधिक स्त्री न रख सकें और एकपत्नी-

व्रतको निवाहे । इसीसे दाम्पत्यप्रेमकी उन्नति हो सकती है और सामाजिक शान्ति बढ़ सकती है।

(४) भारतवर्षकी उच्च जातियोने अपनी जबरदस्तीसे यह उलटी और एकपक्षी रीति जारी कर रक्खी है कि पुरुष चाहे सैकडों विवाह कर ले, एक अथवा अधिक स्त्रियोके मौजूद रहने पर भी नित्य नई नई स्त्रियोको ला लाकर घर भरे, परन्तु स्त्री अपने पतिके मर जानेपर भी दूसरा पति न करने पावे। इसका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि देशमे लाखो-करोड़ो विधवायें हो गई है, जिनमेसे अधिकाश ऐसी हैं कि वे पूर्णरूपसे अपने ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकती हैं। इस लिए वे स्वयं व्यभिचारिणी बनती है और पुरुषोको व्यभिचारी बनाती है। इस तरह व्यभिचारकी खूब वृद्धि होती है। विधवाओंकी देखादेखी सधवायें भी व्यभिचारिणी बन जाती हैं और अनेक अनर्थोंका कारण बनती हैं। इसके सिवा जब इन विधवाओंके गर्भ रह जाते है तब वे लोक-लाजके कारण गर्भपात करके भ्रूणहत्या जैसे भयंकर पाप करती हैं। ऐसे ऐसे दुष्कृत्य करनेसे उनका हृदय महान् कठोर बन जाता है जिससे वे और भी ऐसे अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाती हैं। किसी विधवाके गर्भ रह जाने पर उसके घरके सब आदमी इस बदनामीसे बचनेके लिए गर्भ गिरानेमे उसे सहायता पहुँचाते हैं। अतः जिस विधवाको एक बार गर्भ गिरानेका अवसर मिल जाता है या जिसकी एक बार कुछ बदनामी फैल जाती है वह खुल्लमखुल्ला व्यभिचारिणी बन जाती है। उसकी देखादेखी घरकी अन्य स्त्रियाँ भी ऐसा साहस करने लगती हैं और कुमार्गकी ओर कदम बढ़ाती हैं। ऐसा होनेसे घरका सब प्रबन्ध बिगड़ जाता है और खराबी होने लगती है।

विधवाओंका दूसरा विवाह न होनेके कारण एक और बड़ी खराबी होती है। संसारमें स्त्रीपुरुष प्रायः समान संख्यामें उत्पन्न

हुआ करते हैं, अर्थात् कुवारी लड़कियाँ भी उतनी ही होती हैं जितने कि कुंवारे लड़के। अगर ये सब कवारी कन्यायें कुंवारे लड़कोंको व्याह दी जायँ तो रँडुए ख़ाली रह जाते हैं और वे विधवाओंको व्यभिचारिणी बनानेके लिए बड़ी बड़ी कोशिशें करते हैं। यदि कोई विधवा हाथ नहीं आती है तो वे सधवाओंको ही बहकाते हैं और इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्पात मचाते हैं। यदि वे कुंवारी कन्याये इन रँडुओंको व्याह दी जाती हैं तो उतने ही कुंवारे लड़के सदाके लिए विना व्याहे रह जाते हैं और वे भी जवान होकर इसी प्रकार खराबी करते हैं। रँडुओंका विवाह हो जानेकी हालतमे एक खराबी यह होती है कि रँडुए तो बड़ी उम्रके होते हैं और उनके साथ व्याही जानेवाली कुंवारी कन्यायें बहुत छोटी उम्रकी होती हैं, इस कारण उनका जोड़ा ठीक नहीं मिलता हैं और ऐसे अनमेल विवाहसे सुफल फलनेकी आशा बहुत कम रहती है। बुड्ढोंकी नवविवाहिता स्त्रियें उनकी पोतियोंके बराबर होती हैं। भला ऐसे पितृतुल्य पतिराज पर उनकी प्रीति कैसे हो सकती है और किस प्रकार वे अपने धर्म्मको निभा सकती हैं। मतलब यह है कि विधवाओंका विवाह न होनेसे बहुत अव्यवस्था हो गई है, मनुष्यजातिके सुख-शांतिके अनेक नियम टूट गये हैं और इस प्रकार अशान्तिका विस्तार होकर सारा कारबार तितर-बितर हो गया है।

इन सब बुराइयोंको दूर करने और व्यभिचारको रोकनेके लिए विधवा-विवाहका जारी होना बहुत जरूरी है। ऐसा होनेसे रँडुए और कुंवारे सभी अपनी अपनी योग्यताकी विधवाओंसे विवाह कर सकेंगे—कोई अनव्याहा न रहने पावेगा और सब स्त्रीपुरुष अपनी अपनी राह चलकर संसारकी सुखशांति बढ़ावेंगे। यदि किसी धार्मिक आज्ञाके कारण ये सब बुराइयाँ सहना ही मंजूर हो तो वही धार्मिक आज्ञा पुरुषो पर भी चलानी चाहिए, अर्थात् स्त्रियोंकी तरह उनका भी

दुबारा विवाह होना पापजनक ठहराकर बंद कर देना चाहिए। इससे कमसे कम इतना फायदा तो अवश्य होगा कि कुंवारी कन्यायें रँडुओंको न व्याही जाकर कुंवारोको ही व्याही जाया करेंगी, बूढ़े बाबा भी अपनी पोतियोके समान छोटी छोटी छोकरियोंको व्याह कर उच्च जातिके मुंहमें कालिमा न पोत सकेंगे और न विवाहके दूसरे दिन ही बुड्ढे बाबाकी अर्थी निकल कर उसकी नई दुलहिन सदाके लिए विधवा ही बना करेगी।

८—पारस्परिक सहायता ।

पहले कई अध्यायोंमे हम यह वतला चुके है कि मनुष्यका जीवन-निर्वाह परस्परके व्यवहारसे ही होता है और जितनी उत्तम रीतिसे यह पारस्परिक व्यवहार चलाया जाता है उतना ही मनुष्यका जीवन सुखमय वनता है । अव हम यह दिखलाना चाहते हैं कि यह व्यवहार किस तरह किया जाना चाहिए कि जिससे हमारा जीवन सुखमय हो जावे । इसमें सबसे पहली बात समझनेके योग्य यह है कि परस्परका व्यवहार तो साधारण रीतिसे ऐसा ही होता है कि जो कुछ हम किसीको दे उसका पूरा बदला ले लें । जैसे कि एक पैसा देकर एक पैसे मूल्यकी चीज़ ले लेना, या किसीका एक पैसेका काम करके उससे एक पैसा नकद ले लेना, अथवा जितना किसीका काम किया जाय उतना ही उससे करा लेना । परन्तु मनुष्यका जीवन-निर्वाह केवल ऐसी ही तौल-जोखकी अदला-वदलीसे नही चल सकता हैं, वरन् उसको वहुतसी वातोंमे अपना परस्परका व्यवहार ऐसा रखना पड़ता है कि जिसमे पूरे बावन तोले पाव रत्तीके वदलेका ख्याल हर्गिज़ नहीं हो सकता है, वल्कि उसे केवल यही ख्याल रखना पड़ता हैं कि जव जव जरूरत पड़े तव तव वह उसके काम आ जाय । जैसे कि जव एक घरमे इकट्ठे रहनेवाले पति-पत्नी या दो भाइयों-मेसे एक बीमार हो जाता है तव दूसरा उसकी दवा-दारू और सेवा-शुश्रूषा करता हैं और ऐसी परस्परकी सहायतासे उस कुटुम्बका जीवन-निर्वाह होता है । इस प्रकारकी पारस्परिक सहायतामें पूरे पूरे बदलेकी बात कभी नहीं निभ सकती है । क्यों कि अगर घरके चार आदमियोंमेंसे सबसे पहले एक आदमी बीमार हो जाय और उस समय घरके तीनों आदमी यह सोचने लगे कि हमको तो कभी

बीमार पड़कर इससे सेवा-शुश्रूषा करानेकी जरूरत नहीं पड़ी है, फिर हमीं क्यों इसकी सेवा-शुश्रूषा करें, तो ऐसी स्थितिमे बेचारे उस बीमार पर बुरी बीतेगी। इसी प्रकार जब कभी उन तीनोंमेंसे कोई बीमार होगा तो वह भी अलग पड़ा पड़ा दुःख भोगेगा और कोई उसके पास न जायगा। साराश, इस प्रकार कभी न कभी सबको दुःख उठाना पड़ेगा।

इसके सिवा यदि इन चारोंमेसे एकको बीमारी बारंबार सताती है और बाकी तीनोंको कभी कभी इत्तफाकसे ही हुआ करती है तो पूरा पूरा बदला चुकानेकी सूरतमें तो वे तीनों आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा यदा कदा ही किया करेंगे, बारंबार हर्गिज न करेगे। यदि किसी कारणसे ये तीनो भी बारबार बीमार होने लगे तो वह चौथा भी उनकी बारबार सेवा न करेगा, बल्कि जितनो बार उन्होने इसकी सेवा की होगी उतनी ही बार यह भी उनकी कर देगा और बाकी समय वे भो यो ही पड़े पड़े सड़ेंगे। इसके सिवा किसीको किसी प्रकारकी बीमारी होती है और किसीको किसी तरहकी। कोई तो एक प्रकारकी सेवा चाहता है और कोई दूसरे प्रकारकी। तब पूरे पूरे बदलेका खयाल रखनेकी हालतमें एक आदमी उसकी वैसी ही सेवा करनेको तैयार होगा जैसी कि उसने उसके द्वारा कराई होगी। परन्तु दूसरेको वैसी ही सेवाकी जरूरत नहीं पड़ती, इस लिए कोई किसीके काम न आ सकेगा और पशुओंकी तरह सबको अलग अलग दुःख उठाना पड़ेगा। अतएव मनुष्योंको अपनी सुख-शातिके लिए पारस्परिक सहायताका यही नियम चलाना चाहिए और इसीसे उनका जीवन-निर्वाह हो सकता है कि एकके बीमार पड़नेपर घरके सभी आदमी उसकी सेवा-शुश्रूषा करे, उसके काम आवें, और मनमे बदले-बदलेका कुछ भी खयाल न लाकर जरूरतके अनुसार उसकी टहल करें। आपसमें ऐसा उदार व्यवहार करनेसे ही घरके सब

आदमियोंको पूरा पूरा आराम मिल सकता है और उनकी वहुतसी तकलीफे रफा हो सकती है।

एक घरमे इकट्ठे रहनेवाले लोगोके सिवा हमे अपने मित्रो, पुरा-पड़ौसियों, जाति-विरादरीवालो, नगरनिवासियों और मनुष्यमात्रके साथ इसी प्रकारकी उदारताका व्यवहार जारी करके अपने सुख-साधनोको और भी विस्तृत करना चाहिए। यद्यपि इस प्रकारकी सहायता परोपकार कहलाती है, परन्तु वास्तवमे तो इससे अपनी ही सहायताके अनेक द्वार खुल जाते है और भारी भारी संकट बातकी बातमें दूर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि किसीके घर चोर अथवा डाकुओके आने पर यदि पुरा पड़ौसवाले आकर उसकी रक्षा न करे तो ऐसी दशामे चोर एक एक करके सभीका घर लूट ले जाया करे और जो घरवाला जरा भी चूं-चपड़ करे तो वह जानसे मारा जाय। इस तरह परस्पर एक दूसरेकी सहायता तथा रक्षा न करनेसे सारा नगर ही विपत्तिमे फँसा रहे और उसमे कभी सुख-शांति स्थापित न हो सके। परन्तु किसीके घर चोर आते ही जब सब नगरनिवासी दौड़कर वहाँ पहुँचते है और उसके जान-मालकी रक्षा करते हैं, तब उस नगरमे जाकर चोरी करनेकी हिम्मत चोरोको नहीं पड़ती है और सभी नगरनिवासी वेफिकर होकर आनन्दसे सोते हैं।

यद्यपि इस प्रकार किसी एकके घर चोर आने पर अन्य पुरुषोका उसकी रक्षाके लिए आना परोपकार कहलाता है; परन्तु वास्तवमे इससे अपना ही उपकार होता है। क्यो कि ऐसे परोपकार करते रहनेसे हम सब अपने अपने घर वेफिकरीसे सोते हैं और इस बातका भरोसा रखते है कि यदि हमारे घर पर चोर आजावेगे तो सब आदमी हमारी रक्षाके लिए दौड़े आवेंगे और जिस तरह हो सकेगा हमारे जान-मालकी रक्षा करेंगे। यद्यपि इस व्यवहारमे

बदला हुआ करता है, तथापि इसमें बदलेकी तौल-जोख करने और इस बातका खयाल करनेसे काम नहीं चल सकता है कि हमारे घर चोर आने या अन्य आपत्ति पड़ने पर जो जो लोग हमारी रक्षाके लिए आये थे हम भी उन्हीं उन्हींके घर जायँगे। क्योंकि ऐसा करनेसे बदला चुकानेके लिए हमको उम्र भर अपने मकान पर ही रहना पडेगा—एक दिनके लिए भी हम बाहर न जा सकेंगे। क्योंकि न मालूम किस दिन उन लोगोंके यहाँ चोर आ जायँगे जो हमारी रक्षा करनेके लिए आये थे और हमको भी उनकी रक्षा करनेके लिए जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जिन जिन लोगोकी रक्षाके लिए हम पहले जा चुके हैं उनको भी हम सदैव घर पर ही रहनेके लिए मजबूर करेगे और उनको एक दिनके लिए भी बाहर न जाने देगे, क्योंकि न मालूम किस दिन हमारे यहाँ चोर आ जायँ और बदलेमे उन लोगोको सहायताके लिए बुलाना पड़े। इसके सिवा हमको सारी उम्र मजबूत और तनदुरुस्त भी रहना पड़ेगा, जिससे हम चोर आनेपर उनकी सहायताके लिए जा सके जो हमारे यहाँ आये थे। इसी तरह जिनकी सहायताको हम पहले जा चुके हैं उनको भी मजबूर करे कि वे कभी बीमार न पडे और सदैव तनदुरुस्त रहे जिससे वे हमारे घर चोर आनेके दिन हमारी सहायताके लिए आ सकें। परन्तु ऐसा होना बिलकुल असम्भव है। अतएव ऐसी पारस्परिक सहायतामे बदलेकी तौल-जोख करना अनुचित है, बल्कि इसमे तो इस उदार नियमसे हो काम लेना उचित होगा कि जब किसी भी व्यक्तिके घर चोर आवे या उस पर ऐसी ही कोई अन्य विपत्ति पड़े तब सभी लोग—जो उस समय मौजूद हों और उसे सहायता दे सकते हो—उसकी रक्षाके लिए दौड़े जावे और कभी इस बातका खयाल अपने मनमें न लावे कि उससे हमको कभी सहायता मिली है या नहीं, या आगे उससे मिलनेकी आशा है या नहीं। इस

उदार भावके अनुसार व्यवहार करनेसे ही सबकी रक्षा होती है और किसीको कुछ भी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती है।

बल्कि ऐसा करनेसे उन अबला स्त्रियों, निर्बल बच्चों, बीमारों और अपाहिजोंकी भी रक्षा हो जाती है जो दूसरोंकी सहायताके लिए बिलकुल नहीं जा सकते है। परन्तु इनकी रक्षा करनेमें भी किसी प्रकारका परोपकार नहीं है, वरन् यह भी एक प्रकारका अदला-बदला ही है। क्योकि कौन कह सकता है कि मैं सदा बलवान् ही बना रहूँगा और कभी अपाहिज या बीमार न बनूंगा, अथवा असमयमें मरकर अपनी अबला स्त्री और बच्चोंको ऐसी अवस्थामें न छोड़ जाऊँगा जिसमें हर हालतमें दूसरोंकी सहायताका मुहताज बनना पड़ता है। इस लिए अबला स्त्रियों, बच्चो, बीमारों और अपाहिजोंकी सहायता करना भी एक तरहका बदला ही है। क्यों कि ऐसा करनेसे सबको इस बातका पूरा पूरा भरोसा रहता है कि किसी कारणसे या भाग्यवशात् अगर हम भी ऐसी ही स्थितिको पहुँच जायँ तो उस समय हमारी और हमारे बालबच्चोंकी रक्षा अवश्य हो जायगी। इस लिए जो मनुष्य स्त्रियों, अपाहिजों आदिकी रक्षा और सहायता जितनी अच्छी तरहसे करता है, समय पड़नेपर उसे उतनी ही अच्छी रीतिसे सहायता मिलनेकी आशा भी रहती है।

सुना जाता है कि एक समय किसी जातिके लोगोंमें यह दस्तूर था कि उनमेसे जब कोई मनुष्य कगाल हो जाता था तब उसको सब लोग एक एक रुपया और दस दस ईंटें दे दिया करते थे। वे लोग गिनतीमें एक लाख थे, इस लिए उसके पास सहज ही दूकान चलानेके लिए एक लाख रुपया और मकान बनानेके लिए दस लाख ईंटें जमा हो जाती थीं और वह तुरंत उनकी बराबरीका बन जाता था। इस प्रकार उस जातिमें कोई भी गरीब नहीं होने पाता था और न उनमेसे किसीके दिलमे अपनी संतानके गरीब हो जानेका खटका

रहता था। परन्तु यह पारस्परिक सहायता उसी समय तक चल सकती है जब तक कि बदलेकी पूरी पूरी तौल-जोख न की जावे और न कोई अपनी सहायताको परोपकार बतलाकर अहसान ही करे। क्योंकि ऐसे व्यवहारमे सम्भव है कि किसीको सात पीढ़ीतक भी सहायता न लेनी पड़े और हजारों बार सहायता देनी पड़े, या अनेक बार सहायता लेनी पड़े और बहुत कम बार दूसरोंको सहायता देनेका मौका आवे।

शोक है कि आजकल भारतवर्षमे किसी भी जातिमें इस प्रकारकी सहायता नहीं की जाती है, इसी लिए बड़ी बड़ी धनाढ्य जातियोंके लोग भी कंगाल होकर मुट्ठी मुट्ठीभर अनाजके लिए तरसते दिखाई देते है। इस तरह वारी वारीसे प्रायः सबकी संतानोको कभी न कभी यह दिन देखना पड़ता है और सहायताके विना धीरे धीरे सभी खाकमें मिलते जाते हैं। सहायता करनेकी यह सुंदर प्रथा मिट जाने-पर भी अब भी कई बातोमे जातीय सहायताकी कुछ रीतियाँ दिखाई देती हैं। जैसे कि किसीके घर मौत हो जाने पर सब बिरादरीके लोग एकत्रित होकर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करते हैं और इस कार्य्यमे कभी अदले-बदलेका खयाल मनमे नहीं लाते है।

इस प्रकारकी सहायताको निःस्वार्थ सेवा कहते है और यद्यपि यह सेवा निःस्वार्थ ही नजर आती है और निःस्वार्थ भावसे की भी जाती है, परन्तु वास्तवमें इससे हमारा पूरा पूरा स्वार्थ सधता है। क्योकि इस सहायताके प्रचलित रहनेके कारण जरूरत पड़नेपर हमको भी बिरादरीके लोगों और पुरा-पड़ौसियोसे इसी प्रकार सहायता मिल जाया करती है। इसी तरह किसी व्यक्तिके मर जानेपर उसके सम्बन्धी और बिरादरीके लोग उसकी स्त्री तथा बच्चोंको कुछ नकदी भी देते है, परन्तु वे इस बातका हिसाब नहीं लगाते है कि हमको इससे कितनी बार लेना पड़ा है और कितनी बार देना पड़ा है।

बल्कि उस समय उसे कुछ न कुछ देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं और इस प्रकार बारी बारीसे सबको सहायता मिल जाया करती है। यह निःस्वार्थ सहायता सबकी भलाई करती है। परन्तु खेद है कि अब यह सहायता नाममात्रको रह गई है और लोगोकी मूर्खताने इसकी मिट्टी पलीद कर दी है। क्योंकि इस सहायताका बदला उसे तुरंत ही चुकाना पड़ता है, बल्कि सहायतासे भी दुगुना चौगुना खर्च करके बिरादरीके लोगोंको खूब तरमाल खिलाना पड़ता है और उसे मृतकके शोकके साथ साथ धनका भी शोक मनाना पड़ता है। प्राचीन समयमे इसी प्रकार विरादरीके लोग विवाहके समय भी सहायता किया करते थे और अदले-बदले अथवा तौल-जोखका कुछ भी विचार नहीं रखते थे। ऐसा करनेसे जरूरतके समय सबको भर पूर सहायता मिल जाया करती थी और इसके लिए किसीको अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। परन्तु अब इस प्रथामे भी फरक पड़ गया है। इस सहायताको लोगोने व्यवहार बना लिया है, अर्थात् विवाहके समय जो कुछ सहायता दी जाती है वह व्यवहारके नामसे पुकारी जाती है और बिना सूदकी साहूकारी समझी जाती है। यही नहीं, इस सहायताका बदला चुकानेके लिए उसे तुरंत विरादरीवालों तथा व्यवहारी लोगोको बढ़िया बढ़िया खाना खिलाना पड़ता है; जिससे बेचारे विवाहवालेको अपने विवाहके आवश्यक कामोंकी फिकर तो पीछे डाल देनी पड़ती है. परन्तु विरादरी तथा व्यवहारियोको खिलाने—पिलानेकी चिन्ता आगे रखनी पड़ती है। यदि इस कार्य्यमे जरा भी कसर रह जाती है तो ये सब लोग मिल कर उस बेचारेका सिर खा जाते हैं और उसकी नाकोदम कर डालते है।

पहले इस पारस्परिक सहायताकी एक और उत्तम प्रथा प्रचलित थी जिसका किञ्चित् आभास इस समय भी गाँववालोमे पाया जाता है। वह यह कि जो आदमी अपने गाँवमे आता था या राह

चलता हुआ मुसाफिर ठहर जाता था, वह चाहे पहिचानका हो या गैर-पहिचानका, जातिका हो या गैर जातिका, दूरका हो या नजदीकका, गरज यह कि कोई भी हो उसे मकान, चारपाई, खाना आदि सब कुछ दिया जाता था और उसकी सब प्रकारसे सेवा की जाती थी—उसे सब तरहसे आराम पहुँचाया जाता था। इस प्रकारकी सेवा भी यद्यपि निष्काम सेवा थी, परन्तु इसका बदला उनको अवश्य मिल जाता था। क्योंकि जब वे बाहर जाते थे तब उनको भी इसी प्रकारका आराम मिलता था और उन्हें किसीतरहकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती थी। हाँ, यह अवश्य होता था कि ये तो किसी अन्य गाँवमे जाते थे और इनके यहाँ अन्य गाँवके लोग आते थे, अर्थात् सेवा तो इनको किसी गाँववालोंकी करनी पड़ती थी और अपनी सेवा किसी दूसरे गाँववालोंसे करानी पड़ती थी। परंतु इस उदार व्यवहारसे सफर करनेमे सभीको आराम मिलता था और यही उनकी सेवाका बदला था। परंतु अत्यन्त खेदकी बात है कि अब भारतीय मनुष्योंके हृदयसे उनकी कमजोरी और अज्ञानताके कारण मनुष्यमात्रकी सेवाका उदार भाव निकल गया है और अब वे सभी बातोंमे तुरन्त बदला पानेकी आशा करने लगे हैं। इससे मुसाफिरोको आराम मिलनेका उक्त सहज मार्ग बंद होगया है। इसी प्रकार और भी कई तरहकी सहायताओके तरीके भी बिगड़ गये हैं कि जिनके कारण कई तरहकी अड़चनें और तकलीफें बढ़ गई है।

मनुष्योको ऐसी बहुतसी चीजोंकी जरूरत पड़ती है जो एक एक दो दो ही सारे गाँवके लिए काफी हो सकती हैं, परंतु जिनको गाँवका प्रत्येक मनुष्य अपने लिये अलग अलग नहीं रख सकता है। इस लिए उनमेंसे किसीको तो गाँवके सब लोग साझी होकर बनवा लिया करते थे और किसी किसीको एक एक आदमी ही बनवा लेता था। इस प्रकार सभी चीजे बन जातीं थी और सबके काम आती

थीं। जैसे कोई तो गॉववालोके वैठने और मुसाफिरोंके ठहरनेके लिए मकान बनवा देता था, कोई कुंआ खुदवा देता था, कोई देव-मन्दिर बनवा देता था, कोई गऊओंके गाभिन होनेके लिए सॉंड़ छोड़ देता था, कोई भैंसोके लिए भैंसा दे देता था, कोई ढोरोंको पानी पिलानेके वास्ते कच्चे पक्के तालाव बनवाता था, कोई दवा बॉंटता था, कोई पाठशाला खुलवाता था, कोई ढोरोके चरनेके लिए गोचर-भूमि छोड़ देता था, कोई वड़े बड़े शामियाने फर्श और टोकने कढ़ाहे आदि बनवाता था कि जिनकी विवाह वरातों अथवा ज्योनारोंमे जरूरत पड़ती है और कोई स्मशानके लिए जमीन दे देता था। गरीव लोग अपने गॉवकी रक्षा करते थे और बीमारी आदि जरूरतोके समय रोगियोकी सेवा–शुश्रूषाके काम आते थे। इस प्रकार यद्यपि सभी लोग सबकी सहायता करते थे परन्तु वे अपने दिलमे कभी बदलेका खयाल नहीं लाते थे और गॉवकी सेवा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

इन सार्वजनिक हितकी चीजोको–फिर वे किसीकी बनवाई क्यो न हों–उपयोगमें लानेका अधिकार सब लोगोको होता था और इसमे किसीपर किसीका अहसान नहीं समझा जाता था। सब गॉंववालोका परस्पर ऐसा व्यवहार होता था जैसा कि एक घरमे इकट्ठे रहनेवाले चार आदमियोका होता है। उनमे अपनी अपनी योग्यताके अनुसार कोई कुछ काम करता है और कोई कुछ, और इस प्रकार उनके ये सब कार्य मिलकर ही घरका प्रबंध बँध जाता है और सबको आराम पहुंचने लगता है। इन घरवालोंमें यह विचार तो अवश्य होता है कि सबने अपनी अपनी योग्यताके अनुसार पूरा पूरा कार्य्य किया या नहीं; परन्तु यह खयाल हर्गिज नहीं होता है कि किसका कार्य्य अधिक मोलका हुआ और किसका कमका। बल्कि जब ऐसा खयाल आने लगता है तब उनमे फूट पैदा हो जाती है और वे सब

लोग अपने अपने अपने स्वार्थोंकी और खिंचकर सम्मिलित प्रबंधका ढाँचा तोड़ बैठते हैं। ऐसा होनेसे सभी भारी दिक्कतमें फँस जाते है और कोई अपना कार्य पूरा नहीं कर पाता है। इसी प्रकार गॉववालोमे भी जबतक यह बात रहती है कि यदि किसी-के कामने किसी लखपतीने सौ रुपया लगाया हो, हजारपतिने एक ही रुपया दिया हो, सौ रुपयाकी हैसियतवालेने दो आनेका काम बनाया हो, दशपाँच रुपयेकी हैसियतवालेने एक पैसेका काम किया हो, तो यही समझा जावेगा कि सबने अपनी अपनी योग्यताके अनुसार पूरा पूरा काम कर दिया है और उस वस्तुपर सबका समा-नाधिकार है, तब तक उस गाँववाले एक कुटुम्बकी नाईं हिलमिल-कर रहते और परस्परकी पूरी पूरी सहायता पाते हैं, परन्तु जब उनमे बदलेका तौल-जोख होने लगता है तब सब अपनी अपनी तरफ़से खिंच जाते है और सभीको बड़े बड़े संकटोका सामना करना पड़ता है।

जिस प्रकार कुटुम्बमे छोटे छोटे बच्चो, बीमारो और उन अपाहि-जोकी भी पालना की जाती है जिनसे किसी प्रकारके कामकी आशा नहीं की जाती है, उसी प्रकार गाँवके कंगालो और अपाहि-जोका पालन पोषण करना और उनको किसी प्रकारका दुःख न होने देना भी गॉववालोंका धर्म है। ये अपाहिज लोग अन्य धनवानो तथा बलवानोके समान समस्त गाँववालोको प्रिय होते है और सब लोग उनकी पूरी पूरी खबर रखते है। क्योकि यदि ऐसा न किया जाय तो मनुष्यजाति बहुत संकटमे फँस जाय। कारण कि जो मनुष्य आज लखपती या बलवान् बने फिरते हैं, कौन कह सकता है कि कल उनकी क्या दशा होगी। बहुत संभव है कि वे भी कल ऐसे ही कंगाल अथवा अपाहिज हो जायँ। यदि इन अपाहिजोके पालन-पोषणकी प्रथा उठा दी जाय तो उनको अथवा उनकी संता-

नोंको भूखों मरना पड़े जो आज धनी और सुखी कहलाते हैं। परन्तु खेदकी बात है कि आज कल इस देशमें दीनों और अपाहिजोंके पालनकी प्रथा प्रायः लुप्त ही हो चली है। ऐसे बहुतसे लोग देख जाते हैं जो गाँवके अपाहिजोंकी सहायता तो क्या करेंगे अपने बूढ़े माता पिताकी पालना भी नहीं करते है। ये लोग यह नहीं सोचते हैं कि जब हम बूढ़ होंगे तब हमारी संतान भी हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार करेगी जैसा कि हम अपने बूढ़े माता पिताक साथ करते हैं।

९—मनुष्यमात्रकी सहायता करना।

अधिकाधिक सुखकी प्राप्ति और सहज ही अनेक कार्य्य सिद्ध होनेके लिए मनुष्यको ऐसे बहुतसे कामोंकी जरूरत पडती हैं जो एक एक गाँवके लोगों द्वारा भी सम्पन्न नहीं हो सकते हैं, बल्कि जिनके बनानेमे सारे देश भरको अथवा सारे संसारको जुटना पड़ता है। यथा–सड़के बनवाना, बड़ी बड़ी नदियोके घाट चिनवाना, पुल बँधवाना,, मार्गोंपर जगह जगह कुंए खुदवाना, पानीकी पौ बिठाना, बड़े बड़े स्कूल, कालेज अथवा विश्वविद्यालय स्थापित कराना, वैद्यक, शिल्पकारी तथा कृषिसम्बन्धी कलाकौशल सिखानेके लिए अनेक प्रकारके स्कूल खुलवाना, देशके नामीनामी विद्वानोंको सहायता देकर और उनके लिए वृत्तियॅा नियत करके उनसे उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखवाना, उन्हे सब प्रकारका खर्च देकर विदेशोंमें भेजना जिससे वे अन्य देशोंके कला-कौशल सीख आवें और उनका अपने देशमे प्रचार करे, उनसे तरह तरहके आविष्कार कराना, मनुष्यो और पशुओंके लिए बहुत ऊँचे दर्जेके अस्पताल खुलवाना, बड़े बडे पुस्तकालय स्थापित करना, विविध वस्तुओंकी प्रदर्शिनियाँ खोलनीं, अजायबघर बनाना, सभाये चलाना, उपदेशक घुमाना, अनाथालय, औषधालय, कुष्ठालय चलाना, समाचारपत्र निकालना इत्यादि। इनमेसे बहुतसे कार्य्य तो सारे देशवासियोके चंदेसे हो जाते हैं और बहुतसे कार्य्य धनवानोंके द्वारा हो जाते है। इस प्रकार ये बड़े बड़े कार्य्य चलते हैं और इनसे सभीको लाभ पहुँचता है।

जिस प्रकार कि चार आदमियोंके कुटुम्बमे रोटी बनानेवाली घरकी स्त्री सिर्फ अपने ही वास्ते रोटी नहीं बनाती, बल्कि चारोंकेवास्ते

बनाती है और जिस रोज़ उसे स्वतः नहीं खानी होती है उस दिन भी वह शेष तीनों आदमियोंको बनाती है और उसके बनानेमें प्रतिदिनके समान सावधानी रखती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सार्वजनिक हितकी वस्तुएँ बनवाते हैं वे केवल वही चीज़े नहीं बनवाते हैं जिनकी कि उनको ज़रूरत रहती है, बल्कि वे ऐसी चीजे बनवाते हैं कि जिनसे बहुतोको लाभ पहुँचता है। क्योकि यदि अपनी अपनी जरूरतके अनुसार ही सब कार्य किये जायँ तो दुनियाके बहुतसे भारी भारी काम रुक जायँ और सार्वजनिक हितके कामोमें भारी विघ्न उपस्थित हो जाय। उपरिलिखित चार आदमियोके कुटुम्बमे यदि घरकी स्त्री उस दिन रोटी न बनावे जिस दिन उसे न खाना हो, तो वेचारे शेष तीनो आदमियोको भारी दिक्कत उठानी पड़े, फिर उनमेंसे जो रोज़ी कमानेवाला है वह भी उस दिन रोज़ी कमाने नहीं जायगा जिस दिन कि उसे किसी कारणसे भोजन नहीं करना होगा और इस तरह वह शेष तीनो आदमियोंको भूखा रक्खेगा। इसी प्रकार बाकी दो आदमी भी उस दिन अपने जिम्मेका काम नहीं करेगे जिस दिन कि उनको स्वयं उन कामोंकी ज़रूरत न होगी। ग़रज़ यह कि ऐसा होनेसे सारा खेल ही बिगड़ जायगा और पारस्परिक सहायताका क्रम भंग हो जायगा। परस्परकी सहायताका यह क्रम तभी चल सकता है जब घरके सब आदमी अपने साथियोके लिए भी उसीतरह काम किया करें जिसतरह कि वे अपने लिए किया करते हैं। ऐसे ही सर्वहितके वे सब कार्य्य भी किये जाने चाहिएँ जिनकी कि गाँववालों, देशवासियो अथवा मनुष्यमात्रको जरूरत हो। स्वयं अपनेको उनकी ज़रूरत हो या न हो, परन्तु सबके हितके लिए उन कामोका करना मनुष्यमात्रका धर्म होना चाहिए। ऐसा करनेसे ही सब काम बन सकते हैं और उनसे सबको यथोचित लाभ पहुँच सकता है।

प्रत्येक मनुष्यको सोचना चाहिए कि मै दूसरोंके बनाये हुए कुंएका पानी पीता हूँ। यदि अपने गाँवमे अपना ही खुदाया कुंआ है तो जब सफरको जाता हूँ तब अवश्य ही दूसरोके कुंएका पानी पीता हूँ; दूसरोकी धरती पर चलता हूँ और अन्य कई प्रकारकी सहायताये अपने गाँववालों या दूसरे गाँववालोकी बनाई हुई चीजोंसे पाता हूँ। यदि मैं दूसरोसे यह सहायता न पा सकता तो मेरा सारा कार्य्य डूब जाता। मान लो, यदि प्रत्येक गाँवके लोग दूसरे गाँवके लोगोको न तो अपने कुंएसे पानी देते और न अपनी धरती परसे चलने देते तो दुनियाके लोगोका अपने गाँवसे बाहर निकलना ही वंद हो जाता और ऐसी चीजें जो प्रत्येक गाँवमे पैदा नहीं होती हैं बाहरसे न आनेसे सभी लोगोको बड़े भारी सकटका सामना करना पड़ता। दुनियाके सारे कारबार वंद हो जाते और यहाँ तक कि मनुष्यका जीवन-निर्वाह बिलकुल असंभव हो जाता। अतएव मनुष्योंका कार्य्य पारस्परिक सहायतासे ही चल सकता है और यह सहायता इस प्रकार दी जा सकती है कि सार्वजनिक हितके कामोंमेंसे कोई तो किसी कामको बनवा देवे और कोई किसीको; परन्तु उन कामोंसे लाभ सभी उठावे और इसके लिए कभी भूलकर भी बदलेका खयाल मनमे न लावे। इनका बदला हमे इस प्रकार मिल जाता है कि हमारे बनाये हुए कामोसे सारी दुनिया लाभ उठावे और दुनिया भरके कामोसे हम लाभ उठावें। अर्थात् सारी दुनिया एक कुटुम्ब हो जाय और अपनी अपनी योग्यताके अनुसार सभी आदमी समस्त कुटुम्बके हितकारी कामोको करने लग जावे।

सार्वजनिक हितके कार्य्य करते समय मनुष्यको यह विचार नहीं करना चाहिए कि इस कार्य्यका फल मुझे मेरे जीवनमे ही मिल जावेगा या नहीं, प्रत्युत उस कार्य्यका फल चाहे कितने ही दिनमें क्यों न मिले, या अपने जीवन भरमें भी उसके मिलनेकी आशा न

हो तो भी जनहितकारी कामोंको करनेमे कभी कुंठित नहीं होना चाहिए। क्योकि संसारमें बहुतसे कार्य्य ऐसे है कि जिनका फल बहुत देरमे मिलता हैं और उन कार्य्योंको करनेवाला मनुष्य, प्रायः उनका फल या नतीजा देखे बिना ही चल बसता है। बहुतसे वृक्ष ऐसे हैं कि जिनमे बीसों या पचासो बर्षके बाद फल लगते है, या उनकी छाया ऐसी हो पाती है कि जिसके नीचे मनुष्य विश्राम कर सके। अतएव ऐसे वृक्ष इसी खयालसे लगाये जाते हैं कि जो वृक्ष हमारे पूर्वजोंने लगाये थे उनके फल हम खा रहे हैं और जो हम लगावेगे उनके फल हमारी आगामी संतान खायगी। क्यों कि अपने पूर्वजोंकी जिस उदारताके कारण हमको इन वृक्षोंके फल खाना या इस छायामे बैठना नसीब हुआ है उसी उदारतासे हमको भी काम लेना चाहिए और अपनी आगामी संतानके लिए ऐसे ही सुखप्रद कामोंकी जड़ जमा जानी चाहिए। सारांश यह है कि मनुष्य-मात्रकी सहायतामे जितनी अधिक उदारता दिखलाई जायगी, जितनी ही निष्काम सेवा की जायगी, उतना ही मनुष्य-जातिका कल्याण होगा और वह सुखसम्पन्न होकर उत्कृष्ट बनती जायगी।

किसी समय इस भारतवर्षमे यह निष्काम सेवा या मनुष्यजातिकी हितैषिणा बहुत ऊँचे आसनपर विराजमान थी और सारा संसार एक कुटुम्बके समान समझा जाता था, जिसके परिणामसे जहाँ दृष्टि डालो तहाँ सुख ही सुख दिखाई देता था, दुःख दर्दका कहीं नाम नहीं था और सर्वत्र निर्भयता, निःशंकता तथा पारस्परिक सहानुभूति और सहायताका भाव लक्षित होता था। परन्तु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अब ये सब बाते केवल किस्सा कहानी ही रह गई हैं। हाँ, दूसरे देशोंमें अवश्य ऐसी बहुत कुछ बातें सुननेमें आती है। कहा जाता है कि जिस समय रूस और जापानके मध्य युद्ध चल रहा था उस समय जापानके दो फौजी अफसर रूसके

बंदी हुए थे। उनके पास दो हजार रुपयोंके नोट थे। जब उनको प्राणदंडकी आज्ञा दी गई, तब उनसे पूछा गया कि तुम अपने बाल-बच्चोंका पता बतलाओ जिससे ये नोट उनके पास भेज दिये जायँ। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि "हमारे बालबच्चोंकी पालनाके लिए तो सारा देश (जापान) मौजूद है जो उनको हमसे भी अच्छी-तरह पालन करेगा, और अपनी ही औलादके समान जानेगा; परन्तु हमको अपने उन जापानी भाइयोंकी फिकर है जो तुम्हारी कैदमे फँसे हुए हैं और देशकी गोदसे अलग हो गये है। अतएव अगर आप स्वीकार करे तो हमारे इन रुपयोंको उन्हींकी टहल-सेवामें खर्च कर दीजिए।"

पाठकगण इस एक ही दृष्टान्तसे भलीभाँति समझ सकते है कि जिस देशमे पारस्परिक सहायताका व्यवहार होता है, अनाथो तथा अपाहिजोंकी उदारताके साथ पालना होती है, वहाँ सब आदमियोंको कैसा भरोसा रहता है और कैसी निश्चिन्तता रहती है कि यदि हम किसी समय बिल्कुल ही दरिद्री और अपाहिज हो जायँगे तो भी कुछ दुःख न पायँगे और यदि असमयमे मर जायँगे और अपने बाल-बच्चोंको बिलकुल ही अनाथ छोड़ जायँगे तो उनकी पालनामे भी किसी प्रकारकी बाधा न आयगी। क्योंकि उस समय तो उनपर सारे ही देशकी छत्रछाया हो जायगी। परन्तु खेद है कि भारतवर्षमें आजकल जब किसीको इतना इत्मीनान नहीं होता है कि मेरे अपाहिज हो जानेपर मेरा सगा भाई भी मेरी सहायता करेगा और मुझे पड़े पड़े खिलायगा, तब यह खयाल ही कैसे किया जा सकता है कि मेरे मरनेके पश्चात् कोई मेरी संतानका पालन-पोषण करेगा। इसका कारण यही है कि हम स्वयं ऐसे स्वार्थी हो गये है कि दूसरोंकी सहायता करनेको अपना कर्त्तव्य समझनेके बदले उसे एक बोझा समझने लग गये हैं, और जहाँतक हमसे बनता है इस बोझेको दूर

फेक देने, या दूसरोंकी सहायतासे दूर भागनेकी चेष्टा करते है। इस तरह हम मनुष्यका रूप धारण करके भी पशुओंके समान कर्त्त-व्यहीन या स्वार्थी वन गये है, इसी लिए दूसरोकी सहायतासे वंचित रहकर नाना प्रकारके दुःख सहते है और किसी प्रकारकी उन्नति नहीं कर पाते हैं। परन्तु पाश्चात्य लोगोने जिनको कि हम जड़वादी कहकर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते है, आजकल इस पारस्परिक सहा-यतामे खूब उन्नति की है और इसी लिए सुख-सम्पत्ति उनके घरकी चेरी वन गई है। यही कारण है कि वे स्वर्गसुख भोग रहे है और हम जैसोंके भाग्य-विधाता वनकर देवताके समान पूजे जा रहे हैं।

पाश्चात्य देशोंके पादरी लोग हिन्दुस्तानकी दुर्दशा दिखलाकर यूरोप और अमेरिकासे लाखों करोड़ो रुपया माँगमाँग कर लाते है और अकालके समय यहाँके गरीबोको खिलाकर उनका पालन-पोषण करते है। यही नहीं, वे उन्हे अनेक प्रकारके काम सिखाकर और पढ़ा लिखाकर योग्य वनाते है। भारतके अध्यात्मवादी दूसरे देशके निवासियोपर तो क्या दया दिखलावेंगे, अपने ही देशके अना-थोंकी पालना इन विदेशी-विधर्म्मी पादरियोंके हाथसे होते देखकर ज़रा भी नहीं लजाते हैं। हाँ, उन अनाथोंके धर्म्मभ्रष्ट हो जानेके कारण उनसे घृणा अवश्य करने लगते है और ऐसे कठोर हृदयके वन जाते है कि यदि उनमेसे कोई फिर हिन्दू होना चाहे तो उसे नहीं वनाते है और उसकी सतानको हमेशा धर्मभ्रष्ट रहनेके लिए लाचार करते हैं।

जिस समय भारतवासी सारे संसारको कुटुम्ब तुल्य मानते थे और मनुष्य मात्रकी रक्षा, शिक्षा तथा पालनाको अपना कर्त्तव्य समझते थे, उस समय भारतके उपदेशक संसारके समस्त देशोंमे जाते और समझा बुझाकर सवको सत्य मार्गपर आरूढ़ कराते थे। परन्तु क्या यह लज्जाकी बात नहीं है कि अभारतवासी अपने पूर्वजोंके इन सब

सद्गुणोंके गीन गागाकर तो फूले अंग नहीं समाते है परन्तु अपने लिए ऐसा करना महा पाप समझते हैं। यही नहीं, आजकल इस देशके अनेक धर्मात्मा पुरुप अपनेमेंसे ही वहुतोको धर्म्मसाधन और धर्म्म-ग्रन्थ पढ़नेके अयोग्य समझते हैं और जिन्हे योग्य भी समझते हैं उनको भी धर्ममार्ग व्रतलानेमे नाकोंचने चववाते हैं। सच तो यह है कि जो उदारता किसी समय भारतवासियोमे थी वही अव पाश्चात्योंमे दिखाई देने लगी है। इसी कारण अव वे सारी दुनियाके प्रभु वन रहे है और इतने सभ्य वन गये है कि सव लोग उनसे तमीज सीखते हैं। यही नहीं, वे लोग हथेलीपर जान रखकर और भारी भारी जोखिमें उठाकर आफ्रिका आदि देशोंके हवशियोतकमें विद्या-तथा धर्म्मका संदेशा पहुंचाते हैं। ऐसे परोपकारी कामोंके लिए यूरोप अमेरिकाके उदार पुरुपोसे लाखों करोड़ो रुपयोका चन्दा मिलता है जिस-मेसे वे कई करोड़ रुपया तो केवल भारतर्षमे ही खर्च कर डालते हैं। भारतवर्षके धर्म्मात्मा इनके प्रति तिरस्कार प्रकट करते हुए और इन्हे म्लेच्छ तथा जड़वादी कहते हुए मी इनके दानको लेनेके लिए पल्ला पसारकर खड़े हो जाते हैं और अपने मनमें इतना भी विचार नहीं करते हैं कि अगर हम अव इस योग्य नहीं रहे हैं कि दूसरे देशोका उपकार कर सके तो क्या, यहाँतक भी डूव गये हैं कि अपने बालक-बालिकाओके लिए काफी स्कूल भी नहीं वनवा सकते है ? इस कार्य्यमें विदेशियोका मुंह ताकते हैं और उनके स्कूलों तथा काले-जोमें अपने वालकोंको ईसाई धर्मकी पुस्तके पढ़ने और ईसाई धर्मकी प्रार्थनामे शामिल होनेके लिए वाध्य करते है।

संसार भरके मनुष्योको एक कुटुम्ब मानने और निराश्रितो तथा रोगियोंकी सहायता करनेमें पाश्चात्योंने ऐसी उदारता दिखलाई है कि वे अपने देशसे पैसा पैसा माँगकर भारतके उन कोढ़ियोंके लिए आश्रम वनवाते हैं जिनको देखकर कि हम नाक भौं चढ़ाते हैं, छिः

छिः करने लगते है और इस बातका जरा भी विचार नहीं करते हैं कि ये हमारे ही देशवासी हैं—हमारे ही आश्रित हैं। यदि हमारे भारतवासी इन पादरियोके बनवाये हुए कोढ़ियोके आश्रम जाकर देखे और यदि वहाँ जानेमे घृणा आती हो तो कमसे कम वहाँकी रिपोर्टें पढ़कर ही देखे, तो उन्हे मालूम होगा कि ये विदेशी पादरी उन कोढ़ियोंकी मरहमपट्टी करते है, घटो उनके समीप बैठकर उनको आश्वासन देते है और सब प्रकारसे उनकी सेवा-शुश्रूषा तथा पालन-पोषण करते है। इसी प्रकार ये पादरी लोग इस भारतवर्षमें उन मनुष्योकी शिक्षाके लिए भी आश्रम खोलते है कि जिनके बापदादे सैकड़ों पीढ़ियोसे चोरी या डकैतीका पेशा करते चले आये है। ऐसे कई सहस्र लोगोको इन पादरियोंने अपने आश्रममें भरती किया है और उनको खेती कारीगरी आदि अनेक प्रकारके हुनर सिखलाकर अपने पुरुषार्थके बल खाने कमाने योग्य बनाकर उनका दुष्ट पेशा छुड़ा दिया है और उन्हे बहुत कुछ सभ्य बना दिया है।

हमारे अध्यात्मवादी भारतवासी तो शायद फिरंगियोके इस कृत्यसे नाराज़ ही हो और बापदादोका पेशा छुड़ाकर दूसरे पेशोमे लगानेको जातिभ्रष्ट होना मानकर महापाप ही गिनते हो; परन्तु खेद है कि भारतवासी अपने पूर्वजोकी रीस भी तो नहीं करते है। वे उनके अच्छे अच्छे कामोंको तो धर्मयुगके काम मानकर और अपनेको कलियुगी बतला कर उन कामोंसे अपना पीछा छुड़ा लेते है, तथा खोटे कृत्योको—जो थोड़े दिनोसे चल पड़े हैं—अपने बापदादोकी रीति बतलाकर उन्हे गले लगा रहे है। भारतके पूर्व पुरुष संसार भरको अपना कुटुम्ब समझते और सबकी भलाई करते थे। इस उत्तम कृत्यको तो हम लोगोंने छोड़ दिया है और आपसकी फूटको जो थोड़े दिनसे चल पड़ी है दृढ़ताके साथ पकड़ लिया है। इसी तरह हमारे पूर्व पुरुष मातापिताको देवतुल्य पूजनीय समझते थे और

उनकी पूरी पूरी सेवा-शुश्रूषा करते थे। सो इस बातको तो हम लोगोंने छोड़ दिया, परन्तु कुछ दिनोसे जो यह रीति चल पड़ी है कि जीते जी तो मातापिताको पानी तकके लिए तरसाना—कपड़ेलत्तोंके लिए मुहताज रखना, परन्तु मरने पर परलोकमें उनकी सुखप्राप्तिकी कामनासे दुशाले उढ़ाने, पैसे लुटाने और नगर निवासियोको अच्छे अच्छे माल खिलानेकी प्रथाको पकड लिया है। इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि भारतवासी भले बुरेका ज्ञान छोड़कर जड़बुद्धि हो गय हैं; और स्वार्थकी प्रबलताके कारण उनकी पारस्परिक सहायताका क्रम भी रुक गया है। अर्थात् वे मनुष्यत्वसे हीन हो गये है और इसीलिए नानाप्रकारके दुःख भोग रहे हैं।
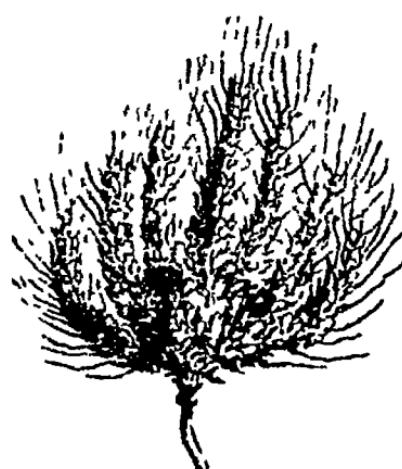
१०–जातिभेद और दानधर्मकी अंधश्रद्धा ।

भारतवर्षमे पारस्परिक सहायताके घट जानेके मुख्य कारण दो ही मालूम होते हैं, एक तो जातिभेद, और दूसरा धर्मके विषयमे विचारशून्यता या अन्धश्रद्धाका होना । इनके सिवा फिजूलखर्ची और बलवीर्य्यकी घटी आदि भी अनेक कारण है कि जिनसे पारस्परिक सहायताका मार्ग बंद हो गया है और स्वार्थका साम्राज्य फैल गया है । भारतके हिन्दू इस समय करीब तीन हजार जातियोंमे बँटे हुए हैं और प्रत्येक जातिके लोग अपनी ही अपनी जातिके अन्तर्गत खान-पान तथा विवाह–शादियाँ किया करते हैं– दूसरी जातिसे खान-पान या विवाह-शादी करना वे इतना गुरुतर पाप समझते है कि भूलसे भी किसी दूसरी जातिवालेके हाथकी रोटी खालेनेवालेको जातिसे बाहर निकाल देनेके सिवा और कुछ उपाय ही नहीं समझते हैं । मानो प्रत्येक जातिके लोग दूसरी जातिके मनुष्योको मनुष्य ही नहीं समझते हैं, और इसी कारण उनसे इतनी घृणा करते है कि यदि वे हमारे चौकेको धरतीको छू दे तो हमारी सारी रसोई ही बिगड़ जाय और अगर हम ऐसी बिगड़ी हुई रसोई खा ले तो हम भी ऐसे भ्रष्ट हो जायँ कि कोई हमारे हाथके छुए चने भी न खाय । जातिभेदकी इस खींचतानसे अन्य जातिके मनुष्योंसे एक प्रकारका द्वेपभाव हो जाता है और यदि द्वेष भाव न भी हो तो घृणा अवश्य ही हो जाती है । ऐसी दशामे परस्पर सहानुभूति रखना, सहायता करना और एक दूसरेके काम आना प्रायः असभवसा हो जाता है । यहाँ प्रत्येक जातिका पेशा जुदा जुदा रहता है, इस कारण प्रत्येक नगर और ग्राममे अनेक जातियोंका

होना जरूरी हो गया है। इनसे परस्पर काम तो सब लेते हैं, परन्तु जातिभेदके कारण एक दूसरेको बिलकुल ही गैर समझते हैं और इसीलिए उनमे पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायताका व्यवहार नहीं रहता है,—सब लोग अपना अपना काम निकालने और अपना अपना स्वार्थ साधनेकी ही फिक्रमे मस्त रहते हैं।

इस जातिभेदने भारतको पारस्परिक सहायतासे ही वञ्चित नहीं कर दिया है, बल्कि विचारशून्यता और आपसके कलहको भी उत्तेजन दिया है। इसके फलसे उच्च जातीय हिन्दू चमार प्रभृति नीच जातीय किन्तु प्रतिदिन काममे आनेवाली हिन्दूजातियोसे यहाँतक द्वेष करते है कि उनको अपने कुओसे पानी तक नही भरने देते है परन्तु जब वे ही लोग हिन्दूधर्म्म छोडकर मुसलमान या ईसाई बन जाते है तो फिर चाहे वे अपना पहला पेशा करते रहे या उससे भी अधिक घृणित धंधा करने लगे तौ भी हमारे हिन्दूभाई उनसे उतना द्वेष नही रखते है, अर्थात् इस दशामे उनको कुंएसे पानी भर लेने देते है और उनको अपने पास भी बिठाने लगते है। फल इसका यह हुआ है कि इन नीच जातियोके लाखो—करोड़ो आदमी ईसाई तथा मुसलमान हो जाते है और इस प्रकार वे पशु-ओसे गई बीती दशासे मुक्त होकर मनुष्यकोटिमें आ जाते है। सच तो यह है कि भारतको इस जातिभेदने ही गारत किया है और उसे एक एक सुईके लिए दूसरोका मुहताज बना दिया है। यही नहीं उसने पारस्परिक सहानुभूति और साहाय्यरूपी रत्नको छीनकर भारतवासियोको पशुकोटिमे लाकर खड़ा कर दिया है। अतएव जब तक यह जातिभेद दूर न होगा तब तक न तो यहाँ पूर्णोन्नति ही हो सकती है और न पारस्परिक सहायता या आपसमे मिलजुल कर काम करनेकी प्रवृत्ति ही पैदा हो सकती है।

अब रही धर्म्ममें विचारशून्यता या अन्धश्रद्धाकी बात, सो इसका क्या पूछना है। इसने तो गजब ढाया है और मनुष्योंको जैसा कुछ पागल या उन्मत्त बना दिया है उसका वर्णन नहीं हो सकता है। अन्य विषयोंमें इसके कारण जो जो खराबियाँ पैदा हुई हैं और इसने मनुष्यबुद्धिको जैसा जड़ बना दिया है उसका तो कहना ही क्या है, एक परोपकार और पारस्परिक सहायताके विषयमें ही देख लीजिए कि लोगोंकी विचारशून्यता या अंधश्रद्धाने उसे यहाँतक विगाड़ डाला है कि प्रथम तो देनेहीका नाम दान रख दिया है और वह क्यों देना चाहिए, किसे देना चाहिए, कब देना चाहिए और क्या देना चाहिए, इत्यादि बातोंके विचारको अधर्म ठहरा दिया है। अर्थात् माँगनेवालेको आँख मीचकर देना ही दान हो गया है। फल इसका यह हुआ है कि अनेक संडे मुसंडे लोग जो भलीभाँति कमाकर खा सकते हैं और सब कुछ कर सकते हैं, वे भी माँगने लग गये हैं और अनेक रूप दिखाकर, अनेक प्रकारकी बातें बनाकर, बल्कि कभी कभी डरा धमका कर भी सब तरहका दान ले जाते और मौज उड़ाते हैं। हमारे घरोंके दानका अधिकांश भाग ऐसे ही लोग खा जाते है और बेचारे अनाथों तथा अपाहिजोंके लिए कुछ नहीं बचता है, इसी लिए वे बेचारे विदेशियो द्वारा पाले जाते हैं और अपने धर्मको त्यागकर उन्हीं जैसे बन जाते हैं। परन्तु विचारशून्यताके कारण भारतवासियोंको इससे कुछ भी लाज नहीं आती है।

इन अन्धश्रद्धालुओंसे यदि यह कहा जाता है कि आँख मीचकर दिया हुआ दान बहुतसे दुराचारी ले जाते हैं और कुकर्ममें लगाते हैं जिससे कुकर्मका प्रचार होता है और साथ ही देशका भी सत्यानाश होता है, तो वे लोग इसका उत्तर देते है कि "हमें तो देनेसे पुण्यकी ही प्राप्ति होती है, फिर वे उसे चाहे कुकर्ममें लगावें या सुकर्ममे।

क्योंकि हम दुनियाके ठेकदार तो हैं ही नहीं, जो इन वातोंको देखे और उनके सुकर्मों अथवा कुकर्मोंका पता लगाते फिरें।" इन लोगोंके इस प्रकारके जवावसे साफ जाहिर होता है कि दानके द्वारा पुण्य-प्राप्तिके शौक या लालचन इनके हृदयसे दया धर्म और परोपकारके भावको विलकुल निकाल डाला है और उन्हे ऐसा कठोर बना दिया है कि चाहे सारी दुनिया डूव जाय, या कैसी ही खराबी फैल जाय परन्तु उन्हे पुण्यकी प्राप्ति हो जाय, जो कि ऐसी अवस्थामे होना विलकुल असभव है। पुण्य पापके स्वरूप और उसकी प्राप्तिके कारणोको जरा भी न समझकर ये अधश्रद्धालु कभी कभी दानका ढोंग भी किया करते हैं, अर्थात् जव कोई वीमार हो जाता है या भारी संकटमे फॅस जाता है तव उसके हाथका स्पर्श कराके उसके नामसे कुछ अनाज या द्रव्य वॅंटवाते हैं और ऐसा करके वे उस वीमारी या संकटके हट जानेकी आशा करने लगते है। इसी प्रकार कई अन्य अवसरोपर भी दानका ढोग रचकर उससे अपनेको महान् पुन्यशाली जानते या उससे वड़े वड़े कामोकी सिद्धिकी वाट जोहने लगते हैं।

दान देनेके ऐसे ऐसे अनोखे व्यवहारोंसे परमार्थ, परोपकार, दयालुता, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायताका खयाल भारतवासियोंके हृदयसे हट गया है और उसकी जगह स्वार्थने अपना अड्डा जमा लिया है। उक्त सिद्धान्तोके माननेवाले अंधश्रद्धालु अपने सुख-शान्तिके दिनोमें एक पैसा भी दानमें नहीं देते हैं, और यही समझे वठे रहते हैं कि ज़रूरत पड़नेपर हम सब कुछ दान कर लेगे। इसके सिवा जव कभी इन लोगोके मनमें आगेके लिए पुण्य-संचयका खयाल आता है और वे कुआ, वावड़ी, धर्मशाला या देवमन्दिर आदि सार्वजनिक कामोंमें द्रव्य लगाते हैं तो उससमय भी उनक हृदयम सार्वजनिक हित या परोपकारका खयाल नाम

मात्रको भी नहीं रहता है, वरन् ऐसे कामोंको वे पुण्य-प्राप्तिका जरिया समझकर ही किया करते है । ये लोग विना जरूरतके भी इन कामोंको वनवाते और उनपर चूनेका प्लास्टर करानेमे और रंगबिरंगे वेल-बूटे खिचवानेमे लाखों रुपया उड़ा देते हैं। यदि इन लोगोसे कहा जाय कि आप जिस ग्राम, नगर, गली या मुहल्लेमें यह धर्मशाला, मन्दिर अथवा कुंआ बनवा रहे है वहाँ तो पहले ही जरूरतसे ज्यादह वने हुए है और जितना रुपया आप प्लास्टर और पच्चीकारीमे लगा रहे है उनसे और भी कई उत्तम कार्य्य हो सकते हैं, तो वे निःसंकोच उत्तर दे देते हैं कि हमको जरूरत गैरजरूरत या उपकार अपकारसे क्या मतलब है? हमे तो पुण्य चाहिए, सो इस मन्दिरके वनवाने या कुएके खुदवानेसे मिल जायगा—जितना रुपया लगावेंगे उतना ही पुण्य मिलेगा। ऐसी अंधश्रद्धासे वडा अनर्थ हो रहा है। यद्यपि इस समय भी लाखो-करोड़ो रुपयोका दान होता है, परन्तु विचार-शून्यताके कारण वह प्राय॰ व्यर्थ ही जाता है। आजकल इन महादानी धनाढयोके कोपमे न तो देशके अनाथो तथा अपाहिजोके लिए ही कुछ रहता है और न अपने देशके वच्चोके पढ़ाने लिखानेके लिए ही। ये सव कार्य्य इस देशमे प्रायः विदेशियो द्वारा ही सम्पन्न हुआ करते है। यदि भारतके इन पुण्यात्मा अंधश्रद्धालुओको ऐसी श्रद्धा हो जाय कि इन कार्योंके करनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है तो वे दानके लिए निकाला हुआ रुपया आँख मीचकर इन्हीं कामोमे खर्च करने लगें और जरूरत वेजरूरत गली गली अनाथालय, स्कूल, कालेज आदि वनवाकर इन कामोंकी भी मिट्टी खराव कर दे! कहनेका मतलब यह है कि जवतक विचारसे काम नहीं लिया जायगा और कार्य-कारणके सम्वन्धको खोजे विना ही आँख मीचकर किसी सिद्धान्तपर विश्वास कर लिया जायगा, तव तक पारस्परिक सहायता और सहानुभूतिका खयाल हृदयमें नहीं आयगा, और जव तक स्वार्थका

भूत हमारे सिरपर सवार रहकर हमसे उल्टे सुल्टे कार्य्य कराता रहेगा तब तक हमको दुःख ही दुःख मिलता रहेगा—सुखप्राप्तिकी कुछ भी आशा न बँध सकेगी।

हरिद्वारके पास जो ऋषिकेश तीर्थस्थान है वहाँ सदैव हज़ारो साधु और भिक्षुक आते जाते रहते है और महीनो वहीं निवास करते है। भारतके धनाढ्योकी तरफ़से वहाँ अनेक दानशालाये बनी हुई है जो छेत्र (अन्नसत्र) के नामसे प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि किसी छेत्रसे चार चार और किसीसे दो दो रोटियॉ प्रत्येक साधुको मिलती हैं और इस प्रकार इनके पास प्रतिदिन इतनी रोटियॉ जमा हो जाती हैं कि ये उन्हे किसी प्रकार नहीं खा सकते है अतः शेष रोटियोंको अपनी गौओ और कुत्तोको खिलाते हैं और यदि उनसे भी बच रहती है तो मछलियोको खिला देते हैं। रोटियोकी ऐसी दुर्दशा होनेपर भी सुना गया है कि वहाँ और भी कई छेत्र खुलनेवाले है, जिनके द्वारा और भी अधिक रोटियॉ उनको मिलने लगेगी। जो अन्न भारतके लाखों करोड़ो मनुष्योंको पेट भरनेके लिए नहीं मिलता है वही इन धर्म-छेत्रोमे मारा मारा फिरता और पशुओको खिलाया जाता है। इन सब बातोंसे साफ़ जाहिर होता है कि भारतके ये दानी लोग उपकारके लिए ये छेत्र नहीं खोलते है। अगर गरीबोके हितके लिए खोलते तो जब वहॉ इतने छेत्र खुल चुके है कि जिनसे साधुओको भरपेट भोजन मिलनेके सिवा बहुतसा पड़ा रहता है तो वहॉ बेज़रूरत और छेत्र खुलवा कर अन्नको बरबाद करके अन्य मनुष्योंको भूखो न मारते। किन्तु इनको न तो इन साधुओके हितका खयाल है और न भारतके अन्य मनुष्योकी ही परवा है, वरन् इनको तो यही विश्वास है कि ऋषिकेशमे छेत्र चलानेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसी लिए वे वहॉ ऑख मीचकर रोटियाँ बँटवाते हैं और पुण्य कमाते हैं। चाहे किसीको रोटियोकी ज़रूरत

हो या न हो, चाहे वे रोटियाँ साधुओंके पेटमें जायँ या कुत्ते बिल्लियाँ खायँ, इसका उन्हे कुछ खयाल नहीं है। देशमें सदा अकाल पड़ा रहता है, अन्नके अभावसे लाखों करोड़ों आदमी भूखो मरते हैं, ऐसी हालतमे उक्त क्षेत्रमें जरूरतसे ज्यादह अन्न क्यो खर्च किया जाय, इसकी उन्हे कुछ परवा नही है। उन्हे तो केवल अपनी अंधश्रद्धा और पुण्य-सञ्चयसे काम है, न कि देशहित या परोपकारसे।

इस प्रकार इन अन्धश्रद्धालु भारतवासियोंकी कृपासे इस समय ६० लाख साधु मौज उड़ाते फिरते है, मिश्री बादाम घुटवाते हैं, भंग छनवाते हैं, गाँजेका दम उड़ाते हैं, हलुवा और मालपुए बनवाते है, गद्दी तकिया लगाते है, साहूकारी करते हैं, हाथी घोड़े रखते हैं और सब तरहके कुकर्मोंके ठेकेदार बने हुए हैं। यद्यपि ये अंधश्रद्धालु इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि इन ६० लाख साधुओंमें बहुतसे महा पाखंडी और ठग भी शामिल है, तो भी ऑख मीचकर इनकी सेवा किया करते है और उन्हे खूब मेवा मिष्टान्न खिलाते है। क्योंकि उनको साधुओका उपकार नहीं करना है, जो वे भले बुरे और सच्चे झूठे साधुकी पहिचान करते फिरें, बल्कि वे साधुवेशकी पूजा करनेमे ही पुण्य समझते है, इस लिए जो कोई साधु सामने आजाता है उसीकी पूजा और आव-भगत करके पुण्य कमा लेते है। क्योंकि वे समझते है कि साधुओकी अशीषसे गृहस्थके सब कार्य्य सिद्ध हो जाते हैं और उनकी शापसे सर्वनाश हो जाता है। इसी लिए वे साधुमात्रकी सेवा करते है और भंग चरस आदि भेट देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। यद्यपि इन चीजोका सेवन करना वे स्वतः बुरा और हानिकारक समझते हैं परन्तु उनको भय लगा रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि इन्कार करनेसे महात्माजी नाराज हो जायँ और हमारी शामत आ जावे।

मतलब यह है कि इन साधु-संतोकी सेवा करनेमे भी उक्त दाताओंके हृदयमे स्वार्थके सिवा परोपकारका भाव जागरित नहीं होता है। पुराणोंसे पता चलता है कि अनेक राजालोग अच्छे साधुओंको भोजन-दान देनेसे अधिक पुण्य मिलनेकी आशासे ऐसा प्रबन्ध करते थे जिससे उनके सिवा और कोई मनुष्य उस साधुको भोजन न दे सके और वह लाचार होकर भोजन करनेके लिए राजाहीके दरवाजेपर आवे। यद्यपि ऐसे प्रबन्धसे साधुओंको बहुत कष्ट उठाना पड़ता था, परन्तु इससे राजाको अधिक पुण्य मिलनेकी सुविधा हो जाती थी और इसी लिए वह इस पुण्यप्राप्तिकी छीना-झपटीमे बलात्कारसे भी काम लेनेमे नहीं चूकता था। इस प्रकार इस पुण्यप्राप्तिकी अंध-श्रद्धाने दयाधर्म, परोपकार, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहायताकी जड़ उखाड़ डाली है। अब भारतवासियोंकी बात बातमे स्वार्थ घुस गया है, जिसका दूर होना मनुष्य-सुखके लिए बहुत ज़रूरी है। क्योकि पारस्परिक सहायता और निष्काम सेवाके बिना न तो मनुष्यका जीवन-निर्वाह ही हो सकता है और न वह वास्तवमे मनुष्य ही बन सकता है।
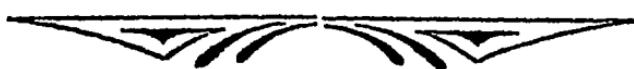
११—दुष्टोंका दमन।
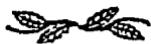
सुखशान्तिकी प्राप्ति और जीवन-निर्वाहके लिए जिस प्रकार पारस्परिक सहायताकी जरूरत है उसी प्रकार मनुष्याको दुःख देने वाले और उत्तम नियमोको तोड़नेवाले दुष्टोंके दमनकी भी आवश्यकता है। अर्थात् ऐसे मनुष्य इन खोटे कामोंसे हटाये जावें, उनसे भले कामोंका अभ्यास कराया जावे और आपसके तिरस्कार तथा राज्यदण्डद्वारा वे पूरी तरह दवाये जावें। ऐसा करना भी मानो मनुष्यजातिकी सहायता करना है। क्योकि ऐसा किये विना मनुष्यजातिकी अशान्ति तथा संकट दूर नहीं हो सकता है। परन्तु शोक है कि जातिभेद और अनेक धर्मोंके पक्षपातने इस कार्य्यमें पूर्ण वाधा डाल रक्खी है। प्रत्येक जातिवाले अपनी जातिके दुष्टसे दुष्ट मनुष्योंके पकड़े जाने, राज्यद्वारा दंडित होने या दूसरी जातिवालोसे तिरस्कृत होनेमे अपनी वदनामी समझते है, इसलिए उनसे जहॉतक हो सकता है वे उनकी तरफदारी करते हैं—उन्हे वचाते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि सभी जातियोंमे दुष्ट लोगोंकी संख्या वढ़ती जाती है, जो सब प्रकारके उपद्रव मचाते हैं, मनुष्योको सताते हैं और मूछोपर ताव देकर वेखटके फिरा करते है।

यही हाल धर्म्मपंथोंका हो रहा है। हिन्दुस्तानमे हिन्दू, जैन, सिक्ख, आर्य्यसमाज, कवीरपंथ, दादूपंथ, वल्लभपंथ (श्रीवैष्णव), राधास्वामीपन्थ, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक धर्म्म प्रचलित है। एक एक धर्मके अनेकानेक पंथ होकर सैकड़ो हजारो पंथ वन गये हैं। प्रत्येक पंथवाला अपने अपने पंथका पक्षपात करने, अपने अपने पंथवालोंकी वुराइयोंको छिपाने और भयंकर दुष्टोंको अपनी शरण

देनेमे ही अपने पंथकी रक्षा समझता है; विशेष करके अपने पंथके साधुओं, गुरुओं और धर्मोपदेशकोंकी बुराइयोंको तो वह अवश्य ही छिपाता है और अपने पन्थकी बदनामीके भयसे बड़े बड़े कुकर्मियोंको भी निभाता है। यहाँतक कि अगर कोई दुष्ट उनके धर्म्मके साधु, धर्मगुरु आदिका वेश धारण करके अपनेको पुजवाता है और उनको खूब ठगने लगता है, तो भी, भेद खुलने पर भी, ऐसे दुष्टोको पकड़वाकर राज्यदंड दिलानेमे वह अपने धर्म्मकी बदनामी समझता है। इसका फल यह हो रहा है कि सभी धर्म्मोंमे पाखंडी साधु और धर्म्मगुरु बढ़ते जा रहे हैं जो कि बिलकुल निर्लज्जता और ढिठाईके साथ लोगोंको लूटते और बेधड़क होकर नानाप्रकारके कुकर्म करते है।

एक समय भारतवर्षमे यह प्रथा चल पड़ी थी कि राजालोग अपने अपने राज्योमे बड़े बड़े जबरदस्त चोर और डाकुओंको बसाते थे और उनसे यह शर्त कर लेते थे कि वे न तो उनके राज्यमे कहीं चोरी, डकैती या लूटमार करेगे और न दूसरे राज्योंके लुटेरोको ही उनके राज्यको लूटने देगे, परन्तु दूसरे राज्योको खूब लूट लूट कर लावेगे। पहले तो एक दो राजाओने ही इस प्रकारके लुटेरोको अपने राज्यमें बसाया होगा, परन्तु धीरे धीरे सभी राजाओने अपने अपने राज्योमे ऐसे लोगोंको बसा लिया और इस तरह अन्य राज्योके लुटेरोसे अपने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध कर लिया। ये राजा लोग अपने अपने राज्योंके लुटेरोकी तरफ़दारी किया करते थे और जब ये दूसरे राज्योको लूटकर आते थे तब उनकी रक्षा करते थे। मनुष्योके हृदयमे ऐसे घृणित स्वार्थके आनेसे मानवजातिकी सुख-शान्तिमें कितनी बाधा पड़ सकती है इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस देशमें जब इस प्रकार लुटेरोको रखनेका रिवाज़ चला था तब प्रत्येक राज्यपर उस राज्यके लुटेरोंके सिवा

अन्य सब राज्योके लुटेरोंकी चढ़ाइयॉ हुआ करती थीं और प्रजा दिन दहाड़े लुटा करती थी। कभी कभी तो इन लुटेरोंकी तरफदारी करनेके कारण राजाओंमे भी लड़ाई छिड़ जाती थी और लाखो मनुष्योंकी गर्दनें कट जाती थीं। परन्तु इस प्रकारके स्वार्थी लोगोंका राज्य बहुत समयतक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही देशमें एक छोरसे दूसरे छोरतक मुसलमानोंका राज्य फैल गया और इन लुटेरोके बसानेकी प्रथा नष्ट हो गई। परन्तु इतना दस्तूर फिर भी जारी रहा कि प्रत्येक ग्रामके लोग अपने अपने ग्राममे लुटेरोंको बसाते रहे और उनकी सब प्रकारसे तरफदारी करते रहे। क्योकि ऐसा करनेसे ये लुटेरे अपने ग्राममे लूट मार नहीं करते थे और दूसरे गॉवके लुटेरोंसे भी अपने ग्रामकी हमेशा रक्षा करते थे। इसका फल भी यही हुआ कि कोई भी ग्राम लुटेरोंसे खाली नहीं बचा। प्रत्येक ग्राम अपने ग्रामके लुटेरोंके सिवा अन्य सब ग्रामोंके लुटेरोंसे लूटा जाता था, रातदिन लूटमार मची रहती थी और मनुष्योको जीना भारी हो गया था। अंतमे अँगरेजी राज्यके उदयसे इन सब लुटेरों तथा डाकुओंका उपद्रव मिट गया और दयालु पादरियोंके प्रयत्नसे उक्त लुटेरे अपने बापदादाओका पेशा छोड़कर खेती कारीगिरी आदि अच्छे अच्छे धन्धे करते हुए सुख चैनसे रहने लगे। इसी लिए अब भारतीय मनुष्योंका जीवन बहुत शान्तिके साथ व्यतीत होने लगा है और लूटमार तथा छीना-झपटी बहुत ही घट गई है।

परन्तु अब भी इतनी बात अवश्य बाकी रह गई है कि बहुतसे अमीर लोग अपने नगरके दो चार बदमाशोंकी खातिरदारी किया करते है। ऐसा करनेसे वे उनसे अपनी रक्षा समझते है और जरूरत पड़ने पर उनके द्वारा लोगोको दबाकर अपना काम भी निकाल लेते है। परन्तु बदमाशोंका इस प्रकार पालन होने और उन्हे प्रश्रय

मिलनेसे दिनपर दिन उनकी संख्या बढ़ती ही चली जाती है। ये लोग शहर भरको सताते और मौका मिलने पर बारी बारीसे उन अमीरोंकी भी दुर्गति बनाते हैं। वे एकको सताकर दूसरेकी शरणमें पहुँच जाते हैं और अपना मतलब गाँठकर आनंदके तार बजाया करते हैं। इसके सिवा आजकल इतना स्वार्थ तो सभी दिखलाते हैं कि नगरके बदमाशोंके दमन करनेकी कोशिशमे शामिल न होकर उनको अपना बैरी नहीं बनाते है, बल्कि खुशामदसे नमस्कार, पालागन, राम राम करके या थोड़ी बहुत भेट पूजा देकर यही कोशिश करते रहते है कि ये बदमाश लोग शहर भरको चाहे जितना सतावे, परन्तु हम पर मेहरबानी रक्खे। इसका फल यह होता है कि ये बदमाश लोग बारी बारीसे सबको ही सताते हैं और जब जिसको सताते है तब उसके सिवा दूसरोंको अपना सहायक बना लेते हैं। गरज़ इस प्रकारका स्वार्थ वास्तवमे स्वार्थ नहीं, उलटा अपना ही घातक होता है।

अतएव मनुष्यको अपनी रक्षा करनेके लिए यह जरूरी है कि वह कभी बदमाशोंका साथ न दे, बल्कि जहाँ तक हो सके उनका दमन करता रहे और किसीके विरुद्ध बदमाशी करनेका उनका हौसला न बढ़ने दे। ऐसा करनेसे उसका स्वार्थ भी सध सकता है और उसकी रक्षा भी हो सकती हैं। परन्तु बदमाशोकी रियायत या तरफदारी करनेसे सबका स्वार्थ बिगड़ता है और सभीको कभी न कभी इन बदमाशोके हाथसे नुकसान उठाना पड़ता है। हाँ, अगर हो सके तो इन बदमाशोको कुमार्गसे हटाकर सुमार्ग पर लानेकी, काम धंधा सिखानेकी या नीतिवान् बनानेकी कोशिश अवश्य करनी चाहिए। प्रेमसे या भयसे, दमननीतिसें या उपदेश द्वारा, जिस तरह हो सके उनको बुरे कामोसे विरत करके मनुष्य बनाना चाहिए

और मनुष्यमात्रकी कुशल-क्षेमका प्रयत्न करते हुए ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन ही आनंदका जीवन कहा जा सकता है। केवल अपना आनंद चाहने और दूसरोंके आनंदकी परवा न करनेमे किसी प्रकार आनंद नहीं मिल सकता है—इससे तो उलटा घोर दुःखमे फँसना पडता है।

१२—'बलवानोंको जीवित रहनेका अधिकार है, निर्बलोंको नही' इस सिद्धान्तका खण्डन ।

पशुपक्षियोंमे बहुधा बलवान् पशुपक्षी अपनेसे निर्बलोको खा जाते हैं और अन्य प्रकारसे भी उनको नुकसान पहुँचाते है। यह देखकर स्वार्थी लोग भी इसी पटरी पर चलते हैं,अर्थात् वे भी अपनेसे निर्बल मनुष्योंको सताते हैं, गुलाम बनाते हैं और उनके समस्त स्वत्वों तथा सुविधाओको छीन लेते हैं। वे Survival of the fittest (सर्वाइवल आफ दि फिटैस्ट) अर्थात् "जो सबसे अधिक योग्य होगा वही जीवित रहेगा" के सिद्धान्तकी दुहाई देते हैं। परन्तु हमारा इन लोगोंसे यह कहना है कि प्रथम तो तुम पशुपक्षियोंसे अधिक बुद्धिमान् हो, अपनी बुराई भलाई और हानि लाभको पहिचानते हो और इसी लिए तुमने अपने सुखके लिए अनेक प्रकारकी वस्तुएँ बना ली हैं, और नित्य नई नई बनाते जाते हो; परंतु बेचारे पशुपक्षी तो प्रकृतिके अधीन हैं, वे न तो कोई नवीन बात ही निकाल सकते है और न अपने जीवनको किसी प्रकार सुधार ही सकते हैं। इस लिए तुमको उनकी रीस करना तथा उनके अधम जीवनको ग्रहण करना कदापि शोभा नहीं देता है। इसके सिवा पशुपक्षी तो अपने पेट भरनेके सिवा और कुछ नही चाहते है, इस लिए वे एक दूसरेकी कुछ भी परवा नही करते हैं, तथा अलग अलग ही अपना गुजारा कर लेते हैं; परन्तु मनुष्योंने तो ऐसा भारी आडम्बर बना लिया है कि उनका पारस्परिक सहायताके बिना क्षणभर भी काम नहीं चल सकता है। इस लिए मनुष्योके बीचमे यह महाभयंकर पाशविक सिद्धान्त चलाना किसी प्रकार उचित नहीं

कहा जा सकता है। यह सिद्धान्त तो खुल्लमखुल्ला मनुष्यको मनुष्यत्वसे गिराता है। इसके सिवाय यदि मनुष्यत्वको छोड़कर पशु बनना ही स्वीकार हो और उनकी रीस करना ही पसंद हो, तौ भी कमसे कम इतना तो अवश्य विचार कर लेना चाहिए कि प्रथम तो पशु भी दो प्रकारके होते हैं, अर्थात् एक तो क्रूर स्वभाववाले या हिंसक, जो दूसरे जीवोको मारकर अपना पेट भरते है जैसे—शेर, भेड़िया, बाज, तीतर आदि, और दूसरे सौम्य स्वभाववाले जो किसी भी जीवको नहीं सताते हैं और घास-पात खाकर ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अब कहिए कि आप इन दोनो प्रकारके जीवोंमेसे किसके आगे पगड़ी रखना चाहते है और किसको अपना गुरु बनाते है? अर्थात् पशुओंमे भी क्रूरस्वभाववाले हिंसक पशु बनना चाहते है, या घास-पात खानेवाले सौम्यस्वभाव पशु।

यदि किसी कारणवश आप क्रूरस्वभाव हिंसक पशु ही बनना चाहे तो इसमे भी आपको इतना विचार अवश्य कर लेना चाहिए कि ये हिंसक पशु अपने जातिके जीवोको कभी नही सताते हैं, अन्य जातीय जीवोको ही मारकर खाते है। इनकी रीस करने पर भी मनुष्य अपनी मनुष्यजातिका विध्वंस कदापि नहीं कर सकेगा, बल्कि वह अन्यजातीय जीवो अर्थात् पशुपक्षियोपर ही अपनी क्रूरता दिखा सकेगा। अतएव यह सिद्धान्त मनुष्योके ग्रहण करने योग्य नहीं है, बल्कि इसके विपरीत परस्पर सबकी सहायता करके, सब मनुष्योको अपना एक कुटुंब समझकर, सबकी सुखशांति और उन्नतिके लिए प्रयासी बनकर ही इस मनुष्य-जीवनका निर्वाह उत्तमतापूर्वक किया जा सकता है।

निस्संदेह प्राचीन समयमे मनुष्यने मनुष्योपर बड़े बड़े अत्याचार किये है। आफ्रिका, फिजी आदि देशोंके रहनेवाले जंगली लोग मनुष्योंको मारकर खा जाते थे। हमारे हिन्दुस्तानमे भी कुछ ऐसे

मनुष्य थे जो राक्षस कहलाते थे और यहाँ भी बहुतसे लोग देवताओंके आगे मनुष्योंको मारकर चढ़ाया करते थे। इसके सिवाय आर्य्यलोगोंने इस देशमें आकर यहाँके मूलनिवासियोंका—गौंड, भील, संथाल आदि लोगोंका—दमन किया, उनका जबरदस्ती राज्य छीन लिया, उनको पहाड़ोंमे मार भगाया, लाखोंका खून बहाया और जो अवशेष रहे उनको अपना गुलाम बना लिया। इन गुलामोंसे अत्यन्त घृणित सेवा ली गई और वे अछूत ठहराये जाकर मनुष्योचित सभी अधिकारोंसे वंचित कर दिये गये। वे दस्यु, शूद्र, चाण्डाल आदि नामोंसे पुकारे गये, धर्मपुस्तकोंके पढ़ने और धर्मसाधन करनेके लिए अनधिकारी ठहराये गये और उनकी उन्नति तथा सब तरहकी सुविधाओंको रोकनेके लिए ऐसे ऐसे कठोर नियम बनाये गये कि जिनके रहते हुए कभी कोई जाति न तो अपनी उन्नति ही कर सकती है और न अधिक समय तक अपना अस्तित्व ही रख सकती है।

इसी प्रकार अभी कुछ शताब्दी पहले यूरोपवासियोंने भी अमेरिका आफ्रिका आदि देशोके जंगली मनुष्योंपर जो भीषण अत्याचार किये थे, वे अवर्णनीय हैं। आफ्रिकाके नीग्रोलोग मानों उनकी समझमें मनुष्य ही नहीं थे। वे ढोरोंकी तरह लाकर बाजारमें बेचें जाते, ढोरोंके समान रक्खे जाते, और कोड़ोंसे पीटे जाते थे। सुनते है कि कई शौकीन लोग तो उनकी शिकार तक खेलते थे। इसी प्रकार इसके पहले सारे यूरोप भरमे अपनी ही जातिके असंख्य लोगोंपर ‘ विच ’ या ‘ डाकिनी ’ होनेका अभियोग लगाकर जो जो दारूण जुल्म किये जाते थे, उन्हे जो जो भयंकर यातनाये दी जाती थीं उनका वर्णन पढ़नेसे हृदय काँप उठता है। इस तरह प्राचीन समयमें प्रायः सभी बलवान् जातियोंने अपनेसे हीन तथा निर्बलजातिके मनुष्योंके प्रति अपना क्रूर स्वभाव प्रदर्शित करके “जिसकी लाठी उसकी भैंस” की कहावतको चरितार्थ किया है।

परन्तु इस समय मनुष्योने बहुत कुछ सभ्यता सीख ली है और इसी लिए वे मनुष्यमात्रके साथ सहानुभूति और समानताका व्यवहार करने लगे हैं। इसी लिए वे न तो अब किसी जातिके मनुष्योंको अपना गुलाम बनाते हैं और न उनसे पशुवत् व्यवहार ही करते हैं। बल्कि अब वे आजाद कर दिये गये है और आफ्रिका देशके उन जंगली लोगोकी संतानें भी उन्नति करने लगी है जो किसी समय अमेरिकामे पहुँचाई जाकर ढोरोके समान वेची गई थीं। इन लोगोमेसे किसी किसीने तो अपनी विद्याबुद्धिके द्वारा यहाँ तक उन्नति कर ली है कि वे अमरिकाके राजकार्य्यमे ऊँचेसे ऊँचे पदोको प्राप्र करने लगे है और उनमेसे कई एक तो वहाँके प्रजातंत्र राज्योके प्रेसीडेट तक भी चुने गये हैं। इसी प्रकार भारतवर्षके अछूत शूद्र भी जो किसी समय उन्नतिमात्रके अनधिकारी और हेय समझे जाते थे अब ईसाई होकर और विद्या पढ़कर योग्य बन जाते हैं और हाकिम बनकर उच्च जातियोपर भी शासन करते हैं तथा स्कूल मास्टर बनकर उनको शिक्षा देते है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि अब मनुष्य पहलेके समान क्रूर पशु नहीं रहा है और न वह क्रूर पशुओसे अधिक नृशंस बनकर अपनी ही जातिके जीवो अर्थात् मनुष्योका विध्वंस करना पसंद करता है। इसके विपरीत अब वह मनुष्यमात्रकी भलाईमे ही अपनी भलाई समझने लगा है। भला ऐसी स्थितीमें अब Survival of the fittest का सिद्धान्त कैसे माना जा सकता है? अब तो मनुष्यकी शोभा इसी बातमें है कि वह अपनी सभ्यतामे कुछ कदम और आगे बढ़कर मनुष्यमात्रको एक समान समझने और मनुष्यमात्रको उन्नत बनानेका प्रयास करे। जिस प्रकार आजकल मनुष्योने गुलाम बनानेकी प्रथा बंद कर दी है उसी प्रकार उन्हे कोई ऐसा प्रबंध भी कर देना चाहिए कि कोई मनुष्य किसी मनुष्यको न तो सता सके,

और न कोई राजा ही युद्ध करके मनुष्योका खून बहा सके, वल्कि सब मनुष्य आपसमें भ्रातृभाव रखकर—एक दूसरेके सहायक बनकर-आनंदमे अपना जीवन वितावे ।

इस स्थल पर यह कह देना भी जरूरी है कि आपसमे प्रीति हो जानेसे पारस्पारिक प्रतिद्वंद्वता या उन्नतिमे एक दूसरसे चढ़ाऊपरी करनेकी अत्यन्त लाभकारी अभिलापामे किसी प्रकारकी वाधा नहीं पहुँचती है, वरन् यह प्रतिद्वंद्वता पारस्पारिक सहानुभूति और सहायताके रहते हुए ही मनुष्यको वास्तविक उन्नतिके प्रदेशमे पहुँचाती है। क्यो कि दूसरोकी उन्नतिको रोककर अपनी उन्नति करना वास्तविक उन्नति नहीं, बल्कि उन्नतिका आभास या भ्रममात्र है। जैसे कोई दो आदमी है। दोनोके पास एक एक हजार रुपये है। अव उनमेसे एक आदमी दूसरेके सब रुपये चोरोंसे लुटवाकर उसे कगाल बना दे और फिर अपने मनमे हर्ष मनावे कि मेरे पास तो एक हजार रुपये हैं और मेरे साथीके पास एक भी नहीं है, इस लिए मैं अब अपने साथीसे हजार गुना धनवान् हो गया हूँ, तो उसका ऐसा खयाल करना निरी मूर्खता है! उन्नतिके ऐसे झूठे खयालसे उसकी वास्तविक उन्नति न होगी, बल्कि वह उसके झूठे खयालमे भूल कर अपनी वर्तमान स्थितिसे भी नीचे गिर जायगा। उसकी वास्तविक उन्नति तो तभी हो सकेगी जब कि दोनो आदमी एक दूसरेको उन्नति करनेका पूरा पूरा अवसर दे और आपसमे एक दूसरेसे सहानुभूत रखते हुए तथा सहायता देते हुए अधिकाधिक पुरुषार्थ और चतुराई द्वारा एक दूसरेसे आगे निकल जानेकी कोशिश करते रहे। ऐसा करनेसे कुछ ही समयमे वे अपने एक एक हजार रुपयोंकी जगह कई कई हजार रुपये कमा डालेगे।

या ऐसे ही, दो विद्यार्थी जो एक ही कक्षामे पढ़ते हो और परीक्षामे एक दूसरेसे अधिक नम्बर प्राप्त करना चाहते हों, यदि

यह कोशिश करने लगे कि मेरा दूसरा साथी बीमार पड़ जाय या उसकी पुस्तक जल जाय जिससे मैं अभ्यासमे आगे निकल जाऊँ और अधिक नम्बर प्राप्त कर लूं तो इसे कदापि उन्नतिकी प्रतिस्पर्धा नहीं कह सकते है-वरन् यह निरी शैतानी और राक्षसी दुराकांक्षा है कि जिससे दोनोंको हानि पहुँचने और दोनोंकी उन्नतिमें बाधा पड़नेके सिवा और कुछ लाभ नहीं हो सकता है। इसके विपरीत उनकी उन्नति तभी हो सकेगी जब वे परस्पर स्नेहपूर्वक एक दूसरेकी सहायता और मंगलाकांक्षा करते हुए एक दूसरेसे अधिक परिश्रम और अध्ययन करेगे। ऐसा करनेसे ही उनकी सच्ची उन्नति हो सकेगी और यही मानवी प्रतिद्वंद्वताका उत्तम तरीका है।

१३--सहनशीलताका अभाव।

जिस प्रकार इस संसारमे मनुष्योकी सूरत शक्ल और रगरूपमे भेद है, उसी प्रकार उनके स्वभाव, आदतो, विचारों, इच्छाओ, जरूरतों और चाल-ढालमें भी भेद है। यही कारण है कि कोई नमकीन या चटपटी चीजे खाना पसंद करता है और कोई मीठी या खट्टी, कोई खेती करना पसंद करता है और कोई व्यापार, कोई कारीगरी करता है और कोई नौकरी, कोई लड़क-भडककी पोशाक पहिनता है और कोई सीधी सादी, कोई अकड़कर चलता है और कोई नम्रतासे। परन्तु प्रत्येक बातमें इतना अंतर रहने पर भी मनुष्यका काम आपसके मेल-जोल और पारस्परिक सहायताके बिना नहीं चल सकता है, इस लिए भिन्न भिन्न प्रकृति और भिन्न भिन्न विचारक मनुष्योको सव प्रकारके कामो और सब प्रकारकी वातोको हर्षके साथ सहन करना पड़ता है और इसी सहनशीलतासे उनका मेल-जोल निभता है।

देखिए, एक दुधमुंहा बच्चा जो न तो समझ ही रखता है और न शक्ति, अपनी माताकी गोद या उसके बिस्तरोंमे मल-मूत्र कर देता है और उसकी माता इस बात पर जरा भी बुरा नहीं मानती है; बल्कि वह खुशीके साथ उसके मलमूत्रको साफ़ कर देती है। क्योंकि यदि माता अपने बच्चेके मलमूत्र करनेको सहन न कर सके तो न तो वह उसे अपने पास रख सके और न उसका पालन ही कर सके। इसी प्रकार यदि एक घरमे दो भाई रहते हो और एक भाईको खाना खाकर दोपहरक समय गाने बजाने और दिल बहलानेका शौक हो और दूसरेको उसी समय थोड़ी देर सोनेकी आदत हो, तो दोनों भाइयोका उस घरमे रहना तभी निभ सकता है जब कि न तो सोनेवाला अपने भाईके गाने-बजानेको बुरा समझे

और न गाने-बजानेवाला अपने भाईके सोनेसे घृणा करे, बल्कि गाने-बजानेवाला अपने भाईके सोनेके समयको बचा कर गावे बजावे और सोनेवाला अपने भा के गाने बजानेके समयको टाल कर सोवे; यही नहीं, दोनों अपने अपने शौकोंको एक दूसरेके सुखके लिए न्योछावर कर दे, अर्थात् एक दूसरेके सुखका इतना ज्यादह खयाल रक्खे कि यदि एक भाईके गाते बजाते रहनेके कारण दूसरे भाईको किसी दिन बिलकुल सोनेका मौका न मिले, या एक भाईके सोते रहनेकी वजहसे दूसरे भाईको किसी दिन बिलकुल गाने बजानेका अवसर न मिले तो वे कुछ भी बुरा न माने।

इसी प्रकार यदि एक भाईको अरहरकी दाल खानेका शौक हो और दूसरेको उड़दकी दालका, तो उनकी रसोईमे दोनों प्रकारकी दालें बननी चाहिए; किन्तु यदि वे ऐसे गरीब हों कि दोनों प्रकारकी दाल न बनवा सकते हो तो किसी दिन अरहरकी दाल बननी चाहिए और किसी दिन उड़दकी। ऐसा करनेसे जिस दिन जिसे अपनी रुचिके विरुद्ध दाल खानी पड़े उस दिन उसे बुरा नहीं मानना चाहिए बल्कि प्रत्येकको यही प्रयत्न करना चाहिए कि चाहे मेरे शौकके अनुसार चीज बने या न बने, परन्तु मेरे साथीके शौकमे फरक न पड़ने पावे। ऐसा करनेसे ही उनका मेल-जोल सदा निभता जावेगा, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि एक पड़ोसीके यहाँ मौतके हो जानेसे शोक छा रहा हो और दूसरेके यहाँ बेटेके विवाहकी खुशी मनाई जा रही हो तो दोनोको बुरा नहीं मानना चाहिए; बल्कि शोकवालेको चाहिए कि वह अपने पड़ौसीकी खुशीमे विघ्न न पड़ने देनेके लिए अपने शोकको यहाँ तक कम कर दे कि अपने पड़ौसीको मालूम भी न हो कि पड़ौसमें शोक हो रहा है। इसी तरह विवाहकी खुशी मनानेवालेको भी चाहिए कि वह अपनी खुशी बिलकुल चुपचाप ही मना ले। इसी

प्रकार यदि बाज़ारमे किसीके विवाहका जुलूस निकल रहा हो और चलने फिरनेवालोंको कुछ समयके लिए रुक जाना पड़ा हो, तो इसमें उनको जरा भी बुरा नहीं मानना चाहिए और मनमे ऐसा विचार नहीं लाना चाहिए कि किसी तरह यह बला टले तो हम आगे बढ़ें; बल्कि जो खुशीका भाव अपनी बारातका जुलूस निकालते समय होता है वही दूसरोंकी बारात निकलते समय भी होना चाहिए। इसी प्रकार और भी हजारो बातोको समझ लेना चाहिए कि जिनमें मिल-जुलकर रहनेके कारण बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। परन्तु इस प्रकार सहनशीलतामे जो कष्ट उठाना पड़ता है वह उस सुखका हजारवॉ हिस्सा भी नहीं है जो इसके बदलेमे मिल-जुलकर रहनेसे मिलता है। इसी कारण मनुष्य बहुधा इस प्रकारके कष्ट सहन किया करते है और अपनी इस सहनशीलतासे बहुत कुछ मेल-जोल भी पैदा कर लेते हैं। परन्तु आश्चर्य्यका विषय है कि धर्मके मामलेमें यह उत्तम नियम न जाने क्यो टूट जाता है और धर्मका नाम आते ही सब मनुष्य अन्य धर्मवालोसे न जाने क्यों ऐसे बागी हो जाते हैं कि मानो इनका आपसमें न कभी मेलजोल हुआ है और न आगे होनेकी आशा है। इसी कारण धार्मिक पर्वों या जुलूसोंके समय मनुष्यके सिरपर ऐसा जबरदस्त भूत सवार हो जाता है जो अगले पिछले सभी सलूको और सद्भावोको तोड डालता है और आँखो पर ऐसी चर्बी चढ़ा देता है कि जिससे अन्य धर्मी बिलकुल गैर और ऐसे घृणित नजर आने लगते हैं कि मानो विधाताने किसी समय उनको भूलसे बना दिया है और भूलसे ही उनको अबतक जीवित रख छोड़ा है।

यद्यपि धार्मिक उत्तेजनाका वह समय निकल जाने पर धर्मका भूत भी सिरपरसे उतर जाता है और लोग फिर आपसमें मेल-जोल करनेकी कोशिश करने लगते है; परन्तु जिस प्रकार कि टूटा

हुआ हीरा नहीं जुड़ता है, उसी प्रकार ठेंस खाया हुआ मन भी फिर नहीं मिलता है। यद्यपि भिन्न भिन्न धर्मोंके वे लोग ज़ाहिर तौर पर फिर मिलने जुलते लगते हैं, परन्तु वह मिलना बिलकुल बनावटी या दिखाऊ होता है। इस धार्मिक द्वेषके कारण हमेशा खटपट बनी रहती है और समय समय पर दोनो धर्मवालोको हानि उठानी पड़ती है।

जिस प्रकार खाने पीने, पहिरने ओढ़ने, और संसारके सब व्यवहारोंमे मनुष्यकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है और अपनी अपनी रुचिके अनुसार उनके भिन्न भिन्न व्यवहारोसे किसीको कुछ हानि नहीं होती है, बल्कि इससे इस विचित्र संसारकी शोभा ही बढ़ती है और विचित्र प्रकारकी प्रवृत्तियोंको देख कर मनुष्यकी विचारशक्ति बहुत कुछ उन्नति करती जाती है; साथ ही लोगोंको सहज ही बहुतसी बातोंका अनुभव प्राप्त होता जाता है और उनको अपनी सुख-शान्तिके नवीन नवीन उपाय निकालने और अधिकाधिक आगे बढ़ते जानेका अवसर मिलता जाता है, उसी प्रकार यदि परलोक-सम्बन्धी कामोंमे भी मनुष्योंके भिन्न भिन्न मत और भिन्न भिन्न प्रवृत्तियाँ रहे तो इसमे कोई हानि नहीं है। बल्कि धर्मसंबंधी और विचार-सम्बन्धी स्वाधीनता मिलनेसे उनमे अधिकाधिक खोज होने, नई नई बातोंके निकलने और दिन परदिन उन्नति होनेकी संभावना रहती है। यदि धर्म्मके विषयमे भी सब लोग इसी प्रकारकी स्वाधीनता मान लें, अर्थात् जिसके मनमे जो आवे वही धर्म माने और जिसे जो धर्म पसंद न हो वह न माने, तो इससे धर्मसे उत्पन्न होनेवाले वे सब झगड़े मिट जायँ जो आये दिन हुआ करते हैं और जिनके कारण भिन्न भिन्नधर्मवालोंमे मनमुटाव होकर सदाके लिए वे एक दूसरेके दुश्मन बने रहते है।

परंतु इस प्रकारकी धार्मिक स्वतंत्रता मिलनेका यह अर्थ नहीं है कि एक धर्मवाला दूसरे धर्म्मवालेको अपने धर्म्मकी महत्ता और

सत्यता न समझावे, या अन्य धर्मकी त्रुटियाँ प्रकट न करे। अवश्य करे, परन्तु प्रेम और मुहब्बतसे करे। जैसे कि उड़दकी दाल खानेवाला एक भाई अरहरकी दाल खानेवाले दूसरे भाईको उड़दकी दालकी बड़ाई और अरहरकी दालकी बुराई समझाता है; या जिसप्रकार देशी वैद्योंसे इलाज़ करानेवाला एक बीमार अँगरेजी डाक्टरसे इलाज़ करानेवाले दूसरे बीमारको देशी ओषधियोंके गुण और अँगरेजी ओषधियोंके अवगुण बतलाता है, और जिस प्रकार इन सांसारिक विषयोंमें एक दूसरेकी बात न मानने पर दोनोंमेसे कोई भी बुरा नहीं मानता है और न उसके लिए लड़ने झगड़ने या जबर्दस्ती करनेको ही तैयार होता है, उसी प्रकार धार्मिक विषयोंमे भी एक दूसरेकी बात न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानना चाहिए और न इस विषयमें किसी प्रकारकी जबर्दस्ती ही करनी चाहिए। परन्तु धर्म्मके विषयमे इससे बिलकुल उल्टी बात नज़र आती है, अर्थात् सांसारिक बातोंमें तो भिन्न भिन्न रुचि और भिन्न भिन्न प्रवृत्तिके मनुष्य एक दूसरेको समझाते हैं, अपनी अपनी रुचि और प्रवृत्तिके हानि लाभ पर प्रेमके साथ बहस करते हैं और न मानने पर कुछ बुरा नहीं मानते हैं, परंतु धर्मके विषयमे बात करनेसे भी डरते हैं। सोचते है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई किसी बातका बुरा मान जाय और बैठे बिठाये आपसमे रंज बढ़ जाय या लड़ाई ठन जाय। इस कारण सब लोग इसीमें कुशल समझते है कि भिन्न भिन्न धर्मवालोंके बीचमे धर्मकी कोई बात ही न छिड़ने पावे। यही कारण है कि बहुधा सब लोग धार्मिक बातोंके छेडनेमे हिचकते है और यदि किसी कारणवश कभी भिन्न भिन्न धर्म्मावलम्बियोंके बीचमे कोई धर्मसंबंधी बात छेड़ी भी जाती है तो सरल भावसे सत्यताके निर्णय करनेकी कोशिश नहीं की जाती है, बल्कि अपनी बुद्धिका सारा ज़ोर लगाकर और सब प्रकारका मायाजाल फैलाकर अपने अपने

धर्मकी बातको ऊँची रखनेका प्रयत्न किया जाता है, और ऐसी खींचातानी की जाती है कि मानो स्कूलके विद्यार्थी दो दल बनकर और आपसमें हार जीतकी बाजी लगाकर रस्सेको अपनी अपनी तरफ खींचनेकी कोशिश कर रहे हों। फल इसका यह होता है कि यदि भाग्यवशात् आपसमें मनमुटाव और लड़ाई दंगा न भी हुआ, तो भी एक दूसरेके धर्म्मसे कुछ न कुछ द्वेष तो अवश्य ही बढ़ जाता है।

अभिप्राय यह है कि इस संसारव्यापी धर्म्मयुद्धने केवल मनुष्योंके मेलजोलके शुभ प्रबन्धमे ही अंतर नहीं डाल रक्खा है, बल्कि धर्मविषयक बातोंके निर्णय करने और उसे एक दूसरेको समझनेके अत्युत्तम मार्गको भी बंद कर दिया है। ऐसी दशामे मनुष्योंमें ये अनेक धर्म्म क्यों फैले, किन किन कारणोंसे यह धर्मयुद्ध जारी हुआ तथा किन किन उपायोंसे यह महायुद्ध शान्त होकर मानवजातिमें सुख-शांतिकी प्रतिष्ठा की जा सकती है, इत्यादि प्रश्नोका निर्णय करना मनुष्यके लिए अत्यावश्यक है।

१४—अन्धश्रद्धा और धार्मिक द्वेषकी उत्पत्ति।

सांसारिक वस्तुओंकी तनिक भी जाँच करनेसे सहज ही जाना जा सकता है कि संसारका सारा खेल वस्तु-स्वभावके अटल नियमोंपर चल रहा है और संसारकी वस्तुओंका स्वभाव अटल होनेके कारण ही हम उनको व्यवहारमें ला सकते हैं। इस समय अग्निका जो स्वभाव है, अर्थात् आज वह जिस प्रकार जलाती, पकाती, उजेला करती और गरमी पहुँचाती है, लाखों-करोड़ों वर्ष पहले भी उसका यही स्वभाव था और आगे भी यही रहेगा। इसी दृढ़ विश्वासपर हम अग्निको जलाने, पकाने, उजेला करने और गरमी पहुँचाने आदिके काममे लाते हैं। यदि अग्निका यह स्वभाव अटल न होता, बदलता बदलता रहता, अर्थात् कभी तो यह अग्नि बर्फके समान ठंडी हो जाती और कभी बिजलीकी नाईं गरम, कभी इससे साँप बिच्छू निकला करते और कभी अंगारे, या कभी इसमेसे आम, अंगूर, नारंगी, सेव आदि मेवे पैदा हुआ करते और कभी शेर चीते आदि, तो यह मनुष्य आगके पास कभी फटकता भी नहीं। परन्तु ऐसा नहीं होता है। मनुष्यको दृढ़ विश्वास है कि आगका जो स्वभाव आज है वही कल था और वही आगे भी रहेगा। इसी लिए वह बेफिकरीके साथ उसे काममें लाता है। इसी प्रकार यदि खेतमें गेहूँ बोनेपर कभी तो उससे कंकर पत्थर पैदा हुआ करते और कभी बर्र ततैये आदि, कभी तरह तरहके अनाज पैदा हुआ करते और कभी हीरे जवाहरात आदि, तो मनुष्य कभी गेहूँ बोनेका साहस न करता। क्योंकि ऐसी दशामें मनुष्यको यही संदेह रहता कि न जाने कौन वस्तु पैदा हो और उसका क्या परिणाम निकले। परन्तु गेहूँ बोनेसे सदैव गेहूँ ही पैदा हुआ करता है, यहाँ तक कि लाल गेहूँ बोनेसे लाल पैदा होता है और सफेद बोनेसे सफेद। इस लिए मनुष्य बेखटके

गेहूँ बोता है और गेहूँ ही काटता है। इसी प्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तुको हम इसी लिए वर्तावमे ला रहे हैं कि प्रत्येक वस्तुका जो स्वभाव आज है वही लाख वर्ष पहले था और वही आगे भी बना रहेगा।

इसी आधारपर मनुष्य वस्तु-स्वभावकी खोज करके वस्तुओंके स्वभावोंके अनुसार उनको अपने कामोमे लाता है। लोहे और पीतलके टुकड़ोंसे बनी हुई घड़ी टक् टक् करती हुई चलती है। यह शक्ति किसी मनुष्यने नई पैदा नहीं की है, वरन् लोहे और पीतलमें यह शक्ति सदासे थी और सदा ही रहेगी। हाँ, जबसे मनुष्यने यह बात खोज निकाली है कि लोहे और पीतलके टुकड़ोंमे यह शक्ति है कि उनको विशेष प्रकारसे बनाने और जोड़नेसे घड़ी बन जाती है तभीसे वह घड़ी बनाने लगा है। इसी प्रकार एंजिन, तारबर्की, फोनोग्राफ, बायस्कोप आदि अद्भुत अद्भुत चीजे जिन वस्तुओंसे बनती है उन वस्तुओंको मनुष्य कहीं स्वर्गसे उठाकर नहीं लाया है और न वहाँके देवता ही आकर उनमे यह शक्ति पैदा कर गये है, बल्कि ये सब वस्तुये पृथ्वीपर सदासे थीं और सदासे ही इनमें फोनोग्राफ और बायस्कोप आदि बनानेकी शक्ति मौजूद थी; परन्तु मनुष्यको यह मालूम नहीं था कि किस वस्तुको कितने परिमाणमे और किस रीतिसे जोड़नेसे एंजिन, तारबर्की, फोनोग्राफ आदि बनते हैं, इसी लिए पहले ये चीजें नहीं बनती थीं, परंतु जब खोजी मनुष्योंने ये बातें मालूम कर लीं तब ये चीजें भी बनने लगीं।

संसारकी वस्तुओंमे इनसे भी अधिक आश्चर्य्यजनक और अद्भुत रूप बन जानेकी शक्ति है, इस कारण मनुष्य ज्यों ज्यों ससारकी वस्तुओंकी शक्तियोंको जानता जावेगा त्यों त्यों वह अनेक नई नई वस्तुये बनाता जावेगा। संसारकी वस्तुये अनन्त हैं और उनकी शक्तियाँ भी अनन्त हैं, इस लिए मनुष्यको सांसारिक वस्तुओंकी नई

नई शक्तियाँ खोजने और नई नई वस्तुये बनानेका मौका सदा ही मिलता रहेगा।

परन्तु संसारके सभी मनुष्योंमे एकसी बुद्धि नहीं रहती है—किसीमें थोड़ी और किसीमे बहुत हुआ करती है। यही कारण है कि एक मनुष्य तो अपनी बुद्धिसे नवीन वस्तु बनाता है और दूसरा देखकर आश्चर्य्य करने लगता है। इसी प्रकार सब देशोंके मनुष्योमे भी एक समान विद्याका प्रचार नहीं हुआ करता है। यही कारण है कि आजकल यूरोप और अमेरिकाके लोग तो नई नई चीजे निकालते हैं, परन्तु हिन्दुस्तानके लोग उनको देखकर भी वैसी नहीं बना सकते है; और आफ्रिकाके हबशी तो ऐसे मूर्ख है कि वे उनकी बनाई हुई चीज़ोको उपयोगमे भी नहीं ला सकते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय भी एकसी बुद्धिवाले मनुष्य नहीं होते हैं। इसी यूरोपके लोग, जो अबसे दो चार हज़ार वर्ष पहले बिलकुल मूर्ख और जंगली अवस्थामें थे, आज अपने बुद्धिबलसे सारे संसारको चकित कर रहे है और वही हिन्दुस्तानी जो अबसे दो चार हजार वर्ष पहले अपने बुद्धिबलके कारण संसारके शिरोमणि बने हुए थे आजकल हाथ पर हाथ रक्खे हुए बैठे है और एक ज़रासी सुई तकके लिए विदेशियोके मोहताज हो रहे हैं।

इस अन्तरका कारण यही है कि जो गेंहूँ बोवेगा वह गेहूँ बटोरेगा और जो काँट बोवेगा वह काँटे पायगा। अर्थात् जो मनुष्य अपनी बुद्धिको जिस काममे लगावेगा वह उसी कार्य्यमे उन्नति कर सकेगा। मतलब यह है कि जो लोग संसारकी वस्तुओंकी शक्तियाँ ढूंढ़ ढूंढकर उनसे नई नई वस्तुयें बनानेकी कोशिश करेंगे वे नई नई वस्तुये बनाकर स्वयं सुख उठावेंगे और दूसरोंको भी सुख पहुँचावेंगे। यही नहीं, वे अपनेसे हीनबल और हीनबुद्धि लोगोंके प्रभु भी बन जायँगे; और जो लोग घमंडमे आकर, सुस्त पड़े रहकर, या

विलासितामे फँसकर इन नवीन नवीन वस्तुओके खोजने और बनानेके कामको व्यर्थ खटराग समझेगे वे महामूर्ख रहकर अन्य देशवासियोके गुलाम बन जायँगे। इसी प्रकार जो देश नवीन नवीन खोजों और नवीन नवीन वस्तुओंको बनानेके कारण सबका शिरोमणि हो गया है वह जब इन बातोंकी ओर उदासीनता प्रकट करने लगेगा या इन सब कामोंको छोड़ बैठेगा तब वह भी अवनत होकर दूसरोंका गुलाम बन जायगा। ठीक ऐसी ही दशा आज कल हिन्दुस्तानकी हो रही है। एक समय जो अपनी विद्या बुद्धिके कारण बहुत ऊँचे चढ़ गया था, वही आज अपनी अकर्मण्यताके कारण नीचे गिर गया है और पुनः ऊपर उठनेकी सुधि भी नहीं करता है।

इस कथनका तात्पर्य्य यह है कि इस संसारमे अपनी अपनी करनीके अनुसार कभी किसी देशके मनुष्य बुद्धिमान् बन जाते हैं और कभी बुद्धिहीन, कभी संसार-शिरोमणि बन जाते हैं और कभी कुली—गुलाम, कभी वे विद्याके स्वामी समझे जाते हैं और कभी महामूर्ख। एक बार बिलकुल नीचे गिरकर जब उनका फिर उत्थान होता है तब वह बिलकुल आहिस्ता आहिस्ता उसी क्रमसे होता है जिस क्रमसे कि मनुष्यत्वकी प्राप्तिके अध्यायमें कहा गया है।

संसारकी वस्तुये अनन्त है और एक एक वस्तुकी शक्तियॉ भी अनन्त हैं। इस लिए संसारकी इन सब वस्तुओकी मिलावटसे जो अनन्तानन्त प्रकारके कार्य उत्पन्न होते है उन सभीके कारणोको समझना मनुष्यशक्तिसे परे है। बेचारे साधारण लोग तो यह मोटा सिद्धान्त भी नहीं समझ सकते है कि कोई कार्य बिना कारणके नहीं हुआ करता है और प्रत्येक कार्य्यका कारण संसारकी इन वस्तुओंमे ही मौजूद रहता है। अर्थात् वस्तु-स्वभावके अनुसार ही संसारके सब कार्य्य बनते है। वस्तु-स्वभावके विरुद्ध न तो कभी कोई कार्य्य हुआ है और न हो सकता है। इस लिए जब मनुष्य ऐसे कामोंको देखते है कि जिनका वे कारण

नहीं जान सकते हैं तब यही समझ लिया करते है कि ऐसी कोई गुप्त शक्ति अवश्य है जिसने वस्तुस्वभावके विरुद्ध यह कार्य्य किया है। यहाँतक कि नजरबन्दीका तमाशा करनेवाले अर्थात् अपने हाथकी चालाकीसे अद्भुत अद्भुत खेल दिखाकर पैसा माँगनेवाले मदारियों और जादूगरोंका तमाशा देखकर भी वे लोग यही कहा करते हैं कि कोई जादू मतर सिद्ध करके या किसी भूतप्रेतादिको वशमें करके उसकी शक्तिसे ही ये लोग ऐसे असंभव कार्य्य कर दिखलाते है। यही कारण है कि आफ्रिकादेशके हबशी आदि मूर्ख और जगली मनुष्य मृत्यु तथा बीमारी आदिके भी देवता मान बैठे हैं और बलवान् मनुष्योंको खुशामद या भेट आदिसे राजी होता हुआ देखकर उक्त देवताओंको भी खुशामद तथा भेट आदिके द्वारा खुश करनेका प्रयत्न किया करते हैं।

ये जंगली मनुष्य जबतक रसोई बनाना, खेती करना आदि काम नहीं सीख जाते हैं और पशुओंकी तरह प्रकृतिसे पैदा हुई वस्तुओं पर ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, तबतक तो केवल मृत्यु और बीमारीके देवताओंको ही मानते है, परन्तु जब थोड़ीसी उन्नति करके खेती आदि करने लगते हैं तब मृत्यु और बीमारीके देवताओंके सिवा अन्य कई प्रकारसे हानि पहुँचानेवाले और और देवताओंको भी मानने लगते हैं। जैसे कि जंगलमे आग लगकर सर्वनाश हो जानेके भयसे वे अग्निको एक भयानक देवता मानकर पूजने लगते हैं, फिर आँधीसे छप्पर आदिके गिर पड़ने और ओलोंसे खेती बर्बाद हो जानेपर आँधी और ओलोंके देवता भी मान लेते हैं। टिड्डियोंके आने और सारी खेतीके चर जानेपर वे टिड्डीदल भेजनेवाला एक देवता मान बैठते हैं और इसी तरह पानी बरसाने, खेती बढ़ाने, प्रकाश करने आदि अनेक कार्य्योंके अनेक देवता मानने लगते हैं और इन सबको उसी रीतिसे राजी रखनेकी कोशिश करते हैं

जैसे कि वे अपनेसे प्रबल और शक्तिसम्पन्न मनुष्योंको राज़ी रखनेके लिए किया करते है। अर्थात् हाथ जोड़ना, सिर नवाना, खुशामद करना, स्तुति गाना, मनुष्य और पशुआदिकी बलि देना, अर्थात् उन्हें मारकर उनका मांस चढ़ाना, आदि जिन जिन बातोंसे वे अपने समयके प्रबल मनुष्योंको खुश किया करते हैं उन्हीं सब बातोसे अपने उन कल्पित देवताओंको भी खुश रखनेका प्रयत्न करते है।

यह पहले कह आये है कि मनुष्यमे बुद्धिविचार और आपसमे बात-चीत करनेकी उत्तम शक्तियोंके साथ साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि ऐसी शक्तियॉ भी हैं कि जिनके अत्यधिक बढ़ जानेपर मनुष्य अपनी बुद्धि और वचनशक्तिसे भी विरुद्ध काम लेने लग जाता है, अर्थात् झूठ फ़रेब आदि बुरे व्यवहारोका व्यवहार करने लगता है। इसी कारण इन महामूर्ख जंगली लोगोमे जो मनुष्य कुछ अधिक चालाक होते हैं वे इन भोले लोगोको ठगनेके लिए किसी देवीदेव-ताके एजेण्ट बन बैठते हैं और कहने लगते हैं कि हमने अमुक देव-ताको अपनी भक्तिसे ऐसा प्रसन्न कर लिया है कि जब हम चाहते है तभी वह हमको दर्शन दे जाता है और जो कुछ हम कहते हैं वही करनेको तैयार हो जाता है। इसके सिवा हमने एक ऐसा मंत्र सिद्ध कर लिया है कि जिससे अमुक देवता हमारे काबूमे आ गया है और हमारी आज्ञाके अनुसार कार्य्य कर देता है। यही नहीं, ये चालाक लोग नवीन नवीन देवता भी बना लिया करते हैं और अपनी मायाचारीसे उन मूर्खोंके मनमे विश्वास जमा देते है कि अमुक देवताने रातको स्वप्नमें आकर मुझसे कहा है या अन्य किसी रीतिसे दरसाया है कि मै यहॉ आकर महामारी या दुर्भिक्ष फैलाऊँगा, या इसी प्रकारकी अन्य कोई भयंकर बात, जो उस समय ठीक फबती हो, कह सुनाते हैं। ये चालाक लोग उस देवताका रूप भी ऐसा अद्भुत और भयंकर बतलाते हैं कि जिससे लोगोंको पूरा पूरा यकीन हो,

जाय कि सचमुच ही वह देवता महाशक्तिशाली होगा। ये लोग उस देवताके अनेक हाथ पैर बतला कर, अद्भुत प्रकारका मुंह वर्णन करके और अद्भुत प्रकारकी सवारी पर आरूढ़ बतलाकर लोगोंके हृदय पर उसका ऐसा आतंक जमा देते हैं कि जिससे लोग तुरंत ही डर जाते हैं और उसे प्रसन्न करनेकी कोशिश करने लगते हैं। देवताके मनाने और भेट चढ़ानेमे उन एजेण्टोंकी बतलाई विधिका अक्षरशः पालन किया जाता है और तब देवताके साथ साथ उनके एजेण्टोंकी भी खूब छनने लगती है।

अपनी तथा अपने देवताकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए ये चालाक लोग यह भी जाहिर करते रहते हैं कि अगर कोई दूसरा आदमी हमारे देवता या हमारे मंत्रको सिद्ध करना चाहे तो हम उसे भी सिद्ध करा दे सकते है। इस प्रकार बहुतसे लोगोको अपने पीछे लगाकर और उनसे अपनी खूब सेवा कराके वे अपने देवता तथा मंत्रको सिद्ध करनेकी ऐसी कठिन विधि बतलाते है कि जिसकी साधना करना कठिन ही नहीं वरन् असंभव होता है। जैसे कि पौष मासके जाड़ेमें सारी रात नदीके बीचमे नगे खड़े रहकर मंत्रका एक लाख जप करना, या किसी वृक्षके नीचे नंगी तलवार गाड़कर या खौलते हुए तेलका कढ़ाहा रखकर उसके ऊपर वृक्षकी डालीके आसरे उलटे लटकना और जप पूरा हो जानेपर उस रस्सीको काट देना जिसके सहारे डाली पर लटका गया हो। उस समय इस बातका कुछ भी भय न करना कि तलवार पर गिरकर मेरे दो टुकड़े हो जावेगे या तेलके कढ़ाहेमें पड़कर मैं मर जाऊँगा। क्यों कि अगर पूरी श्रद्धासे काम किया जाय तो वह मंत्र उसे ज्योंका त्यो जीवित कर देगा। अथवा यह विधि बतलाते हैं कि नित्य आधी रातको अमुक भयानक स्थानमें जाकर इस मंत्रके इतने जाप करना और जाप पूरा होनेपर निःशंक होकर देवताके आगे अपना सिर काटकर चढ़ा देना। यदि पूरी श्रद्धाके साथ यह

काम किया जायगा तो कटे हुए सिरको देवता फिर जैसेका तैसा जोड़ देगा। ये चालाक लोग इस प्रकारकी अनेक असंभव विधियाँ बतलाते हैं और साथ ही उनको यह भय भी लगा दिया करते है कि मंत्रका जाप करते समय देवता लोग अनेक प्रकारके भयंकर रूप धारण करके साधकको डराया करते है और अनेक प्रकारसे उनके जापको भंग करनेकी चेष्टा किया करते हैं। उस समय यदि वह साधक ज़रा भी विचलित हो जाय या डर जाय, तो पागल हो जाता है या उसी समय मर जाता है। इसी प्रकार यदि मंत्रसिद्धिकी विधिमें भी कुछ फरक पड़ जाता है तो इसका भी ऐसा ही बुरा परिणाम होता है। मतलब यह है कि ये चालाक लोग मंत्रसिद्धिके विषयमें ऐसी ऐसी बातें बतला देते हैं जिससे कोई भी उसे सिद्ध करनेका साहस नहीं करता है। परन्तु अपने विषयमें यह कह दिया करते हैं कि हम तो ये सब विधियाँ सात सात बार कर चुके हैं और भारी भारी उत्पात सहन कर चुके हैं। तभी तो हमको ये सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी बतलाई हुई विधिके अनुसार साधना करनेका साहस तो कोई नहीं करता है, परन्तु उन चालाक लोगोकी यह प्रसिद्धि अवश्य हो जाती है कि पुजारीजी या भगत-जीने बड़ी बड़ी कठिन साधनाये करके अमुक मत्र या अमुक देवताको सिद्ध किया है। इस प्रकारकी प्रसिद्धिसे लोगोकी श्रद्धा उन चालाक लोगोपर और भी अधिक जम जाती है और फिर उनकी पूरी पूरी पूछताछ होने लगती है।

देवताका इष्ट रखनेवाले ये भगत लोग यह भली भाँति जानते हैं कि जिस प्रकार हम अपनी चालाकीसे अमुक देवताके एजेण्ट बन बैठे हैं, वैसे ही दूसरे चालाक लोग भी किसी प्रचलित देवताके भगत बनकर या कोई नवीन देवता खड़ा करके लोगोंको अपनी तरफ खींच सकते हैं या हमारे देवताको झूठा और अपने देवताको

सच्चा सिद्ध करके लोगोका मन हमारे देवताकी तरफसे हटाकर अपने देवताकी तरफ झुका सकते हैं, इस लिए वे बहुधा कहा करते हैं कि यदि कोई धूर्त्त हमारे देवताकी सचाई या उसके देवत्व पर कभी किसी प्रकारका सदेह करेगा या उसकी शक्तिको नहीं मानेगा, तो हमारा देवता कुपित होकर सारे देशका सत्यानाश कर डालेगा। इस कारण सब मनुष्योंको उचित है कि वे ऐसे धूर्तको देशमे न रहने दे, चाहे वह अपना सगा भाई भी क्यो न हो। क्यो कि उस एकका नाश होनेसे सारा देश तो सत्यानाशसे बचा रहेगा! बस, यहींसे धर्मके नाम पर मारकाट और खून खराबीकी बुनियाद पड़ती है और प्रचलित सिद्धान्तोके विरुद्ध यदि कोई अपना नवीन श्रद्धान बनाता है तो उसकी जानका दुश्मन बन जानेकी परिपाटी चलती है।

पाठकोको मालूम होगा कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियॉ अपने बच्चोंका इलाज ऐसे ही लोगोसे कराती है जो बहुधा नीच जातीय, अपढ, महामूर्ख, अत्यन्त मायाचारी और बात बनानेवाले हुआ करते है। ये लोग झाड़-फूंक, जतर-मतर करते, गंडा तावीज बॉधते और अट-कलपच्चू कुछ ओषधियॉं भी देते हैं। इस कारण बहुधा इन्हीं लोगोकी बेवकूफीसे अनेक बच्चोकी जाने जाया करती है। वे लोग भली भॉंति जानते है कि बेचारी भोलीभाली और अपढ स्त्रियॉ जितनी हमारे बहकानेमें आ सकती है उतने मर्द नहीं आ सकते है। उनको सदैव यह भय लगा रहता है कि कहीं ये लोग अपने बचोका इलाज हमसे न कराकर किसी वैद्य या हकीमसे न कराने लगे, इस कारण वे बहुधा स्त्रियोंसे कहा करते हैं कि इस बच्चेको आराम पहुँचानेके लिए हमने अपने इष्ट देवताकी बहुत कुछ आरा-धना की है और देवताने आराम कर देनेका बादा भी कर दिया है,

अथवा इस बच्चेको अमुक शीतला, मसान या पिशाच लगा हुआ है कि जिसके प्रसन्न करनेके लिए मैं बहुत कुछ कोशिश कर रहा हूँ, परन्तु यदि तुम्हारे घरके आदमी इसे किसी वैद्य या हकीमकी दवा खिला देंगे तो देवता नाराज हो जावेगा और तब वह हमारे हाथका नहीं रहेगा । इन लोगोंकी ऐसी ऐसी बातोंसे बेचारी भोली-भाली स्त्रियाँ बहुत डर जाती हैं और फिर उनके घरके आदमी चाहे लाख सिर पटकें, परन्तु वे उनको ओषधि नहीं खाने देती हैं । यदि लोगोंके कहनेसे वैद्य घर आकर दवा तैयार करके रख जाता है, तो वह ज्योंकी त्यों रक्खी रहती है और बच्चेको नहीं दी जाती है । ऐसी बातें प्राय नित्य ही घर घर देखी जाती हैं । जब बच्चेको आराम नहीं मिलता है तब उन लोगोंको यह कहनेका अवसर मिल जाता है कि हम क्या करें, तुम्हारे घरके लोगोंको तो देवतापर श्रद्धा ही नहीं है, इसीसे देवताकी नाराजी हो गई है । इन बातोंपर विश्वास करके स्त्रियाँ अपने मर्दोंकी मूर्खता-पर दिल ही दिलमें कुढ़ा करती हैं और कभी कभी तो उनसे लड़ने झगड़ने तक लगती हैं । हिन्दुस्तानके चालाक लोगों और मूर्ख स्त्रियोंके इस दृष्टान्तसे यह बात भलीभाँति समझमें आ जाती है कि आफ्रिका आदि असभ्य देशोंमें देवताओंके पुजारी किस प्रकार अपने देशके भोले लोगोंको डरवा कर देवतापर शंका करनेवालोंके विरुद्ध खड़ा किया करते हैं और किस प्रकार सर्वसाधारणको उनकी जानका दुश्मन बना दिया करते हैं ।

१५—अन्ध-विश्वास और विचार-शून्यता।

आफ्रिका आदि देशोंके जंगली मनुष्य प्रत्येक आदमीके मर जानेपर यह मानने लगते हैं कि इस शरीरमें मरनेके पहले जो चीज़ बोलती चालती और शरीरको हिलाती—चलाती थी, वह यद्यपि इस शरीरमेंसे निकल गई है, परन्तु वह होगी यहीं कहीं। अर्थात् या तो वह अपने मकान या खेतमें होगी या किसी ऊँचे वृक्षादि पर निवास करने लगी होगी। इस प्रकार उनमे भूत-प्रेतादिकी कल्पना उत्पन्न होती है और अगर किसी सम्बन्धी या मित्रको वह मृत मनुष्य स्वप्नमे दिखाई दे जाता है तो फिर तो इस बातका पूरा यक़ीन हो जाता है कि वह भूतके रूपमें अवश्य ही मौजूद है। स्वप्नमें मृत मनुष्य प्रायः उसी रंगरूपमें और वैसे ही वस्त्राभूषण-सहित दिखाई देता है जिसमें कि वह जीवित अवस्थामें रहता था। इस लिए वे भोले लोग यह विचार तो करते नहीं हैं कि यदि वही मरा हुआ मनुष्य स्वप्नावस्थामे आता तो अपने पहले रंग रूप और पहले ही वस्त्राभूषणोंमे कैसे नजर आता; जब वह अपने शरीरसे अलग हो गया है उसमे उसके शरीरका रंग-रूप कैसे दिखाई दे सकता है, और वस्त्राभूषण भी जो कुछ वह पहिनता था जब सब यहीं छोड़ गया है, तब उन्हीं वस्त्रा-भूषणोंसहित कैसे दिखाई दे सकता है; इस लिए वह हमारी स्वप्नावस्थामें नहीं आता है, बल्कि जिस रूपमें वास्तवमे हमने उसको जीवित अवस्थामें देखा है उस अवस्थाकी याद आनेसे ही यह स्वप्न आता है। यदि वास्तवमें वह स्वप्नावस्थामे आता तो किसी ऐसे विलक्षण रूपमें दिखाई देता कि जिसको हमने पहले कभी न देखा होता। इसके सिवा वह बिना किसी वस्त्राभूषणके

बिल्कुल नग्नरूपमे ही नज़र आता। परन्तु इतनी विचार-बुद्धि न होनेके कारण वे लोग अपने स्वप्नके खयालहीको सच मान लेते हैं और यह समझने लगते है कि वह मृत मनुष्य ही भूत बनकर हमको स्वप्नावस्थामे दिखाई देता है।

पूर्वोक्त चालाक लोग जिस प्रकार देवी-देवताओंके पुजारी बनकर सर्वसाधारणको उनका भय दिखलाते रहते है और उनसे अनेक प्रकारके कार्य्य सिद्ध करा देनेकी आशाये दिलाते हैं, उसी प्रकार वे इन मरे हुए आदमियो अर्थात् भूत-प्रेतादिकोंकी भी अद्भुत अद्भुत शक्तियाँ बतलाकर उनका भय दिखलाते हैं और उनसे भी कार्य्य-सिद्धि करानेकी आशा दिलाते रहते हैं। यही नहीं, किसी जंत्र–मत्र अथवा अपने सिद्ध किये हुए प्रबल देवताके द्वारा उन भूत-प्रेतोंको दबाने, धमकाने और वशमें करके उनसे काम लेने आदिकी अपनी शक्तियोका भी यकीन दिलाकर भोले भाले लोगोंको लूटा करते हैं।

भोले लोग कार्य्य-कारणके सम्बन्धको नहीं जानते हैं, अर्थात् वे इस बातको नहीं पहिचान सकते हैं कि कौन कौन कार्य्य किन किन कारणोंसे बन और बिगड सकते हैं। इस लिए बेचारे प्रत्येक बातका कारण इन गुप्त शक्तियों, अर्थात् देवी–देवताओं, और मरी हुई आत्माओं या भूत-प्रेतोंको ही मान लेते हैं, साथ ही ये मायाचारी पुजारी भी देवी–देवताओ और भूत–प्रेतोंकी बड़ी बड़ी शक्तियाँ बतलाकर उनको निश्चय करा देते हैं कि जो कुछ हानि-लाभ, रोग-शोक और सुख-शांति मनुष्यको मिलती हैं वह सब इन्हीं देवी-देवताओं और भूत–प्रेतोके द्वारा मिलती है। इसके सिवा वे कहते रहते हैं कि अपने सुख-दुःख आदिका कोई अन्य कारण समझना मानों इन देवी–देवताओंकी अवज्ञा या अविनय करना है। इस लिए इन गुप्त शक्तियोंके सिवा किसी भी कार्य्यका अन्य कोई कारण नहीं समझना चाहिए; नहीं तो देवतालोग नाराज होकर सत्यानाश कर डालेंगे।

इस भयके कारण भी बेचारे भोले लोग अपने मनमे किसी वातका स्वतंत्र विचार नहीं करने पाते है। इस डरकी अवस्थामे यदि कभी किसी मनुष्यके मनमे कोई सदेह उत्पन्न हो जाता है और वह अपने संदेहको दूर करनेके लिए पूछने लगता है कि इन देवताओकी शक्तिके सिवा संसारकी अन्य वस्तुओमे भी तो कुछ न कुछ शक्ति अवश्य होगी और देवताओकी शक्तिकी भी तो कोई सीमा अवश्य होगी, या वह इसी प्रकारका कोई दूसरा प्रश्न कर वैठता है, तो उसके प्रश्नको सुनकर सभी लोग काँप उठते हैं और उसे धर्म्मद्रोही और देवताओको रुष्ट करनेवाला समझकर या तो उसे देशसे निकाल देते है या उसे जानहीसे मार डालते हैं।

इस देशमे तो आजकल भी वहुधा यह देखा जाता है कि गाँवके लोग और विशेप करके छोटी जातिके लोग सव प्रकारकी वीमारियो, दुःखों-कष्टो और हानियोको देवी-देवताओ और भूत-प्रेतोका ही प्रकोप समझते है और इन्हींमेसे कुछ चालाक आदमी ऐसे भी निकल आते है जो किसी देवताके भगत वनकर अपने इष्टदेवकी कृपासे उन लोगोके दुःखोका कारण वतलाने लग जाते है। ये चालाक आदमी चाहे कितने ही मूर्ख क्यो न हों और नित्यके सांसारिक व्यवहारोमे चाहे इनका एक रत्तीभर भी भरोसा न किया जाता हो, चाहे ये कैसे ही वदचलन और वदमाश क्यो न समझे जाते हो, तो भी भगतके नामसे पुकारे जाते हैं और ऐसा समझा जाता है कि किसी देवी-देवताका इष्ट होनेके कारण इनको अवश्यमेव कोई अद्भुत ज्ञान प्राप्त है कि जिसके द्वारा ये सवके सुख-दुःखोंके कारणोंको वतला देते है। लोगोंकी ऐसी धारणा भी रहती है कि ये अपने देवी देवताओके द्वारा चाहे जिसको सुख-दुःख भी पहुँचा सकते हैं। यही कारण है कि सव लोग अपनी सव-प्रकारकी चिन्ताओंमे इनके पास जाते है और इनसे अपने

दुःखोंका कारण और उनकी निवृत्तिका उपाय पूछते हैं। ये लोग भी उनके लाये हुए उड़दके दाने देखकर या अन्य किसी रीतिसे बतलाने लगते है कि तुम्हारे इस दुःखका कारण अमुक देवी-देवता या भूत प्रेतादिका प्रकोप है, या तुम्हारे किसी वैरीने तुम्हारे ऊपर कोई जबरदस्त जादू-मंतर कर दिया है। बस, भोले लोग उनकी बातों पर पूरा विश्वास कर लेते हैं और फिर उन्हींके बतलाये हुए मार्गके अनुसार उसका उपाय करने लगते हैं। इस देशके छोटी जातिके लोग प्रायः किसी भी बीमारीका इलाज नहीं करते हैं। सभी रोगोंमें देवताओंके प्रकोपको शान्त करनेके लिए जादू-मंतर, झाड़-फूक और गंडा-तावीज आदिके प्रयोग किया करते हैं। इससे चाहे उन्हें आराम हो या न हो; परन्तु देवताके अप्रसन्न हो जानेके भयसे न तो वे बीमारीका अन्य कोई कारण ही ढूंढ़ते हैं और न किसी तरहका इलाज ही कराते हैं।

बुखार, तापतिल्ली, सिरदर्द, थनेला (दूध पीते बच्चेके सिरकी चोटसे माताके स्तनका सूज जाना), बच्चोंके जिगरका बढ़ जाना, बच्चोंके पेटमे कीड़े हो जाना और फोडे आदि अनेक प्रकारकी बीमा-रियोंके अलग अलग मंत्र हुआ करते हैं। इन बीमारियोंके होते ही प्रायः सभी लोग इन मंत्रोंके जाननेवाले गुनियोंके पास जाते हैं और उन्हींसे झड़ाते-फुंकाते हैं। परन्तु अब ज्यों ज्यों विद्याका प्रचार होता जाता है और लोगोंकी विचारशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों इन मंत्रोंकी शक्ति घटती जाती है और ये मंत्र झूठे पड़ते जाते हैं। और यह तो स्पष्ट ही है कि इन मंत्रोंकी जितनी शक्ति गॉवोंमें है उतनी कस्बोमे नहीं है और जितनी कस्बोंमें है उतनी शहरोंमें नहीं है। इस प्रकार ज्यों ज्यों विद्याका प्रकाश बढ़ता जायगा त्यों त्यों इन मंत्रोंकी शक्ति अंधकारकी नाई लुप्त होती चली जायगी।

मंत्र-तंत्र और देवी-देवताओंके अनुयायी केवल ज्वरादि बीमारियोके लिए ही मंत्र-तंत्र नहीं कराते हैं, बल्कि साँप, बिच्छू, बर्र-ततैया आदि जहरीले जानवरोंके काटनेपर उनका जहर भी मंत्रोंके ज़ोरसे ही उतरवाते है और अन्य भी अनेक प्रकारके काम इन्हीं मंत्रोंसे कराते है। हिन्दुस्तानके बहुतेरे लोगोंको विशेष करके स्त्रियो और अनपढ़ोंको तो देवी-देवता, भूत-प्रेत और जंत्र-मंत्रोपर इतनी भारी श्रद्धा है कि उनको इतना विचार करनेका भी साहस नहीं होता कि यह देवता हमारे धर्म्मका भी है या नहीं। उनके सामने चाहे जिस किसी देवी-देवता या भूत-प्रेतका नाम ले दिया जाय, जंगलके झाड़-झूड़ पत्थर आदि चाहे जिस पदार्थको देवता कह दिया जाय, वे उसीकी पूजा करनेके लिए तैयार हो जाते है। उनके हृदयमे देवी-देवता आदिके प्रकोपसे सर्वनाश हो जानेका ऐसा भारी भय बिठा दिया गया है कि जिससे उनको इस बातके विचार करनेका साहस ही नहीं होता है कि यह देवता भूत-प्रेत या गंडा-तावीज हमारे धर्मका है या ऐसे धर्म्मका है कि जिसे हम बिलकुल झूठ और नरककी ओर ले जानेवाला समझते है। इसी कारण हिन्दूलोग मुसलमानोकी कबरो और उनके पीरोंको पूजते हैं, उनके धर्म्मके गंडे तावीज बनवाकर गलेमें बाँधते है, उनके धर्मके जतर-मंतर कराते है और आसानीसे बच्चा पैदा हो जानेके वास्ते उनके कल्मेका रुपया पानीमे धोकर बच्चा जननेवाली स्त्रीको पिलाते हैं।

देवी-देवता, भूत-प्रेत और जंत्र-मंत्रोंको माननेवाले इन लोगोके सामने यदि कोई मनुष्य उनकी इस मान्यतापर किसी प्रकारकी शंका करने लगता है तो वे उनकी बातपर ध्यान देनेके बदले काँप उठते हैं, इस लिए कि कहीं वह देवता या जंतर-मंतरकी शक्ति जिसके विषयमे यह मनुष्य शंका कर रहा है हमसे इस कारण नाराज न हो जावे कि तुमने हमारे विरुद्ध इस मनुष्यकी बातको

सुना ही क्यों ? इस कारण यदि इन लोगोमे बल होता है तो शंका करनेवालेको धमकाकर चुप कर देते है और यदि निर्बल होते हैं तो स्वयं ही हट जाते हैं। स्त्रियाँ तो इस प्रकारकी बात उठते ही डरकर कहने लगती है—" बारी मैं उसके नाम पर, उसकी जागती जोतकी शक्ति तो अपरमपार है, उसका नाम लेनेसे ही बेड़ा पार है।"

इस प्रकार जब यहाँ आजकल भी देवी देवताओंके नाराज हो जानेका इतना भय फैला हुआ है कि जिसकी बजहसे विचारशक्तिको जरा भी काम नहीं करने दिया जाता है, तब आफ्रिका आदि देशोंके निवासियोका तो—जहाँ अभी सभ्यताका आरंभ हो रहा है— कहना ही क्या है। वे बेचारे तो बिलकुल विचारशून्य होकर अत्यन्त श्रद्धालु बने हुए हैं। उनके श्रद्धानके विरुद्ध यदि कोई जरा भी शंका उठाता है तो वे उसकी जानके दुश्मन हो जाते हैं और उसे मार ही डालते हैं।

इस प्रकार इन देवी-देवताओ, भूत-प्रेतों और जंत्रो-मंत्रोकी अपार शक्ति मानने और उनके नाराज़ हो जानेके भयसे पूरी पूरी विचार-शून्यता फैलती है और विवेकसे काम लेनेवालोंको धर्मद्रोही मानकर उनके विरुद्ध धर्म्मयुद्ध ठाननेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, जिससे उन्नतिके मार्गमें बड़ी भारी रुकावट खड़ी हो जाती है।

१६—विचारवान् साहसी पुरुषोंके द्वारा उन्नतिके मार्गका खुलना ।

मनुष्य विचारशून्य रहनेकी चाहे जितनी कोशिश करे, परन्तु आखिर वह मनुष्य ही है—उसमें विचारशक्तिका होना एक स्वाभाविक गुण है। इस कारण जब वह एक कार्य्यको वारंवार एक ही प्रकारके कारणोंसे होता हुआ देखता है तब उसके मनमें आप-ही-आप यह विचार पैदा होता है कि यह कार्य्य किसी गुप्तशक्तिकी इच्छा पर निर्भर नहीं है, बल्कि अमुक अमुक कारणोके जुट जानेसे बना हुआ मालूम होता है। जब वह देखता है कि गेहूँ बोनेसे ही गेहूँ पैदा होता है, बिना गेहूँ बोये कभी गेहूँ उत्पन्न नहीं होता है, तब उसके हृदयमें आप-ही-आप यह संदेह उठता है कि देवताओंकी शक्ति ऐसी अपरिमित नहीं मालूम होती है कि वह गेंहूँके बीजके बिना गेंहूँ पैदा कर दे। इसी प्रकार जब वह देखता है कि कुत्ता बिल्ली, भेड़ बकरी, घोड़ा बैल आदि पशु और मनुष्य सब अपनी अपनी जातिके पुरुषके वीर्य्य और स्त्रीके रजसे पैदा होते हैं तब उसके हृदयमे यह विचार पैदा होता है कि इन कारणोके बिना किसी देवतामें बच्चा पैदा करा देनेकी शक्ति नहीं है। इसी प्रकार जब वह देखता है कि सूर्य नित्य ही कुछ समयके बाद छिप जाता है और नित्य ही कुछ समयके बाद निकल आता है, तब उसको संदेह होने लगता है कि यद्यपि सूर्य महान् शक्तिशाली देवता है और सारे संसारको प्रकाशित करता है, परंतु वह भी ऐसा नहीं है जो हमारी प्रार्थना और भेट-पूजासे खुश होकर ही निकलता हो या हमसे रुष्ट होकर छिप जाता हो। चाहे हम उसकी पूजा करें या न करें, वह नित्य ही नियत समय पर इसी प्रकार निकलता और छिपता रहेगा।

इसी प्रकार और भी अनेक वाते मनुष्यकी विचारशक्तिके कारण उसके मनमे पैदा होती रहती हैं । यद्यपि देवताके कुपित हो जानेका डर उसको इस प्रकारके विचार मनमे लानेसे रोकता रहता है और वह इस प्रकारके विचारोंको दूर करनेकी कोशिश भी करता रहता है; परन्तु मनुष्यकी विचारशक्ति इस प्रकार दवानेसे विलकुल नाश नहीं हो जाती है, वह कुछ न कुछ काम करती ही रहती है । यही कारण है कि उन मनुष्योमे कुछ ऐसे तीक्ष्णवुद्धि और विचारशील मनुष्य भी अवश्य पैदा हो जाते हैं जो लाख दवाने पर भी अपनी विचारशक्तिको नहीं दवा सकते है और धीरे धीरे वस्तुस्व-भाव और कार्य्य-कारणके अटल सम्बन्धको जान जाते है । परन्तु अपने विरोधियोके हाथसे मारे जाने या भारी विरोध खड़ा हो जानेके भयसे वे अपने इन विचारोको अपने मनमे ही छिपा रखते हैं—किसीसे कहनेका साहस नहीं करते है; वल्कि प्रयत्क्षमें उन्हीं सिद्धान्तों और मन्तव्योंका पोषण करते रहते हैं जो सर्व-साधारणको मान्य होते है । इन कायरोंके ऐसे मायाचारसे मनुष्य-जातिकी उन्नतिमें वड़ी ही रुकावट पड़ती है । क्यो कि इनकी तीक्ष्णवुद्धि और विचारशक्ति अन्य संसारी कामोमे प्रकट होते रह-नेसे साधारणलोग इनको अपनेसे अधिक वु मान् समझने लगते हैं और जव वे इन वुद्धिमान् कायरोंको प्रचलित सिद्धान्तोंका ही पालन और समर्थन करते देखते हैं, तव अपने मनमे विचार करने लगते हैं कि हमारे मनमे प्रचलित सिद्धान्तोके विषयमें जो संदेह उत्पन्न हुआ है वह हमारी वुद्धिकी कचाई ही है । क्यों कि अगर हमारे इन नये विचारोंमे कुछ भी तथ्य होता तो इन वुद्धिमान् पुरुषोके मनमे तो हमसे पहले ही ये विचार उत्पन्न हुए होते और ये कदापि इन प्रच-लित सिद्धान्तोंका समर्थन न करते ।

इस प्रकार यद्यपि इन विचारवान् पुरुषोंकी कायरतासे मनुष्य-जातिको वहुत हानि पहुँचती रहती है और वहुवा ऐसे सैकड़ों कायर

पुरुष पृथ्वीपर पैदा होते रहते हैं, परन्तु सौ दो सौ या हजार पाँचसौ वर्षमे कोई न कोई ऐसा साहसी पुरुष भी निकल आता है जो इन विचारोको अपने मनमे छिपाये रखनेसे मनुष्य-जातिकी बहुत भारी हानि समझता है और इसी लिए वह अपने विचार सर्वसाधारणमे प्रकट किये बिना नहीं रहता है। वह अधिक नहीं तो साहस करके इतनी बात हो कह ही डालता है कि इन देवी-देवताओं, भूत-प्रेतो और जंत्र-मंत्रोकी शक्ति ऐसी अनन्त नहीं है जो कारण न जुटनेपर भी किसी कार्य्यको उत्पन्न कर दे। इस लिए जो कार्य्य जिन जिन कारणोंसे होते हैं उन कारणोंके जुटाये विना देवताओंसे उन कार्य्योंके सम्पन्न करा देनेकी प्रार्थना करना या जंत्र-मंत्र कराना बिलकुल व्यर्थ है। इसी प्रकार कार्य्य सिद्ध न होनेपर यह समझना भी बिलकुल ग़लत है कि देवताको राजी करने या जंत्र-मंत्रको सिद्ध करनेकी विधिमे कोई फ़र्क रह गया है। ऐसे मौकेपर यही समझना चाहिए कि कारणोके जुटानेमे कुछ फर्क रह गया होगा जिससे यह कार्य्य नहीं बना हैं। क्यों कि देवता उसीके कार्य्यको बना सकते है जो उस कार्य्यके कारणोको पूरा पूरा जोड़ देता है। अँगरेजीमें एक कहावत प्रसिद्ध है-"The God helps those who help the mselves." अर्थात् परमेश्वर उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी सहायना आप करते है। इसका भावार्थ यह है कि जो मनुष्य अपने कार्य्यके कारणोंको जुटाते है उन्हींका कार्य्य सिद्ध होता है। फारसीमे भी एक ऐसी ही कहावत है जिसका भावार्थ यह है कि मनुष्य जिस कार्य्यकी कोशिश करता है ईश्वर भी उसीमें सहायता पहुँचाता है। गरज यह कि जिस कार्य्यके कारण जुटाये जावेगे परमेश्वर वही कार्य्य सिद्ध कर देगा, अर्थात् कारणोंके जुटनेसे कार्य्य आप ही हो जायगा।

ऐसे विचारशील साहसी पुरुपोके प्रकट होनेसे यद्यपि लोगोंमें बड़ी खलबली मच जाती है, और तात्कालीन पुजारी और पंडे या

धर्मात्मा और धर्मके ठेकेदार लोग उनके विरुद्ध बहुत शोर गुल मचाते हैं और उन्हें धर्मद्रोही तथा नास्तिक आदि कह कर उनका तिरस्कार करते है, बल्कि कभी कभी तो उन्हे मार डालनेके लिए तलवारें तक उठाते हैं और बहुधा ऐसे साहसी पुरुष मार भी डाले जाते हैः परन्तु इससे मनुष्यजाति कुछ आगेको अवश्य सरक जाती है। क्योकि लोगोके भयसे कोई मुहसे कुछ भी कहता रहे, परन्तु उस साहसी पुरुषकी बात सबके हृदयमे चुभ जाती है और धीरे धीरे वह हृदयमें घर कर लेती है। ऐसी दशामे बहुधा लोग छिपे छिपे इन बातोंकी सत्यताका अनुभव करने लगते है और इस प्रकार कुछ समयके पश्चात् वह अंधश्रद्धा भी धीरे धीरे लोगोंके हृदयसे दूर होने लगती है। उनको विश्वास हो जाता है कि कोई भी कार्य्य बिना कारणोके जुटे कभी सिद्ध नहीं हो सकता है।

ऐसा होनेसे मनुष्यजाति अंधश्रद्धाके गहरे गड्ढेसे निकल कर उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगती है। क्योकि अब उसको प्रत्येक कार्य्यकी सिद्धिके लिए एक मात्र देवकृपाके भरोसे नहीं बैठा रहना पड़ता है, बल्कि प्रत्येक कार्यके कारणोकी खोज करके और उन कारणोको मिलाकर अपना कार्य स्वतः सँभालना पड़ता है। अर्थात् वह पशु-जीवनसे मनुष्य-जीवनमे आ जाता है। पशु अपने प्रत्येक कार्य्यके लिए प्रकृतिके भरोसे पर बैठे रहते है और स्वयं कोई भी कार्य्य नहीं करते हैं, अर्थात् न तो वे अपने कार्योंके कारणोंको ही जानते हैं और न उन कारणोंके मिलानेकी ही कोशिश करते हैं। वे तो पृथ्वीपर जो कुछ आप ही आप पैदा हो जाता है उसी पर अपना जीवन-निर्वाह करते रहते है। इसी प्रकारका पशु-जीवन उन मनुष्योंका भी समझना चाहिए जो न तो अपने कार्योंके कारणोकी खोज ही करते थे और न उन कारणोंको मिलाते थे, बल्कि प्रत्येक कार्य्यके लिए देवताओंसे प्रार्थना करने या जादू-मंतर करनेके सिवा

और कुछ नहीं करते थे। परतु अब उस एक परोपकारी साहसी पुरुषकी बदौलत लोगोंकी प्रवृत्ति बदल जाती है और वे अंधश्रद्धासे मुक्त होकर विचारशीलतासे काम लेने लग जाते है, अर्थात् अपने कार्य्योंके कारणोंको ढूंढकर और उनको जोड कर अपने अनेक कार्य्य सिद्ध करने लगते है।

जिस देशमे जिस समय ऐसे विचारशील और साहसी मनुष्य अधिक होते है जो अपनी जानपर खेलकर सर्वसाधारणको जगाते और समझाते हैं कि अमुक अमुक कार्य्यके लिए अमुक अमुक कारणोंके जुटानेकी आवश्यकता है, इन कारणोंके जुटाये विना केवल देवी-देवताओंकी खुशामद या मंत्र-जत्रके भरोसे कुछ नहीं होगा; उस समय उस देशके निवासी एक बडे भारी अँधेरेसे निकलकर उन्नतिके प्रकाशमें आ जाते है और प्रत्येक कार्य्यके कारणोको ढूढ ढूंढ कर उन्हे सिद्ध करने लगते हैं। इसके विरुद्ध ऐसे साहसी, विवेकी और परोपकारी महात्माओके अभावमे उन्नत देश भी नीचे गिर जाता है और उस देशका सारा कारोवार बिगड़ जाता है। यूरोप जो आजकल सबका शिरोमणि और रक्षक बना हुआ है वह ऐसे ही महात्माओकी बदौलत इस उन्नत दशाको पहुॅचा है जो अपने उन्नत और स्वतंत्र विचारोके द्वारा कार्य-कारणके अटल नियमोको सर्वसाधारणके सम्मुख रख कर सदैव उनको आगे सरकाते रहे हैं और धर्मगुरुओं तथा पुजारियोंकी कृपासे मारे जाते रहे है।

एक समय यह भारतवर्ष भी वस्तुस्वभावकी खोज करनेवाले बड़े बड़े दार्शनिकोकी कृपासे उन्नतिके शिखरपर पहुँच चुका था, परन्तु अब कुछ दिनोसे ऐसे लोगोके कारण फिर निम्न स्थितिमे पहुँच गया है कि जिन्होने भाग्य, होनहार या ईश्वरेच्छाको महान्‌शक्ति बतलाकर अपन देशवासियोंको पुरुषार्थहीन बनाकर खुल्लमखुल्ला यह सबक पढ़ाया है कि अपने किये कुछ नहीं होता है, जो करता है सो पर-

मेश्वर ही करता है। इन नवीन धर्म्माचार्य्योंकी ही वदौलत हिन्दुस्तानमें इस प्रकारकी कहावतें प्रसिद्ध हो गई हैं कि " होनहार अमिट है " " भाग्यके आगे किसीका कुछ वश नहीं चलता " " जव वह देनेको आता है तब छप्पर फाड़कर देता है " " होयँगे दयाल तव देयँगे वुलायके " इत्यादि । इन कहावतोंसे उनकी अकर्मण्यता और परवशताका भाव भलीभाँति लक्षित होता है ।

लोगोंको अंधा बनाकर अपना स्वार्थ साधनेवाले लोगोने हिन्दुस्तानियोंके हृदयसे वस्तु-स्वभावका खयाल और कार्य्यकारण-वादके अटल सिद्धान्तको बिलकुल निकाल डालनेके लिए ऐसी ऐसी कपोलकल्पित कथाये रच-रचकर खड़ी की है कि जो वस्तुस्वभावके बिलकुल विपरीत हैं। जैसे—(१) किसी स्त्रीके लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती थीं। जब उसके सात लड़कियाँ पैदा हो चुकीं तव उसके पतिने नाराज होकर उसको घरसे निकाल दिया। उस स्त्रीको एक साधु मिल गया जिसकी कि उसने खूब मन लगाकर सेवा की। एक दिन साधुने प्रसन्न होकर उस स्त्रीसे कह दिया—जा, तेरी सब लड़कियाँ लड़के बन गई हैं। स्त्रीने घर आकर देखा तो वे सब वास्तवमे लडके बन गई थीं। (२) एक साधुके शापसे कोई राजा एक वर्षके लिए स्त्री बन गया और उसके गर्भसे एक बच्चा भी पैदा हुआ। वर्ष पूरा होते ही वह फिर पुरुषका पुरुष बन गया। (३) एक साधुकी शापसे एक साहूकारका सारा धन कोयला हो गया और एक साधुकी अशीषसे एकके घर कोयलेकी अशर्फियाँ बन गईं। (४) एक साधुके कहनेसे एक किसानके खेतमे गेहूँकी जगह मोती ही मोती पैदा हुए और एकके खेतमें अनाजकी जगह साँप बिच्छू और बर्र ततैयाँ। (५) देवताकी कृपासे महाप्रचंड अग्निकी जगह जलका सरोवर बन गया और दहकते हुए अंगारोकी जगह उसमे सुंदर कमल खिल गये। (६) एक मुर्दा जिन्दा होकर राम राम कहता हुआ

उठ खड़ा हुआ। (७) शत्रुकी तलवार फूलोंका हार बन गई। गरज़ कहाँ तक लिखे, कुछ दिनोंसे इस भारतवर्षमे ऐसा भारी अन्धेर फैला दिया गया है कि दार्शनिक सिद्धान्तोंपर बड़ी बड़ी बारीक बहस करनेवाले और बालकी खाल निकालनेवाले विद्वान् भी इस प्रकारकी अप्राकृतिक कहानियोंपर विश्वास रखते हैं और इनको सत्य बतलानेमे जरा भी नहीं शरमाते हैं।

इस प्रकार जबसे हिन्दुस्तानके लोगोंने वस्तु-स्वभाव और कार्य्य-कारणके अटल नियमको भुला दिया और देवी-देवताओंकी अलौकिक शक्तियो तथा जंत्रों-मंत्रोके असम्भव-प्रभावोपर भरोसा करके अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिए कारणोंका जुटाना छोड़ दिया, अर्थात् पुरुषार्थहीन होकर कोयलकी तरह 'तूही तूही' पुकारने लगे, तबसे उनके सभी कार्य्य मटियामेट हो गये और तभीसे उनको उन पड़ौसके देशोके मुसलमानोंने अपना गुलाम बना लिया जिनको ये अपने झूठे घमंडमे आकर म्लेच्छ कहा करते थे। उन मुसलमानोंने इनके मंदिरोको तोड़कर और मूर्त्तियोंको फोड़कर उस जगह अपनी मसजिदे बनवाई और नित्य सवा लाख जनेऊ तोड़नेकी आज्ञा जारी कर दी। उस समय न तो इनके असंभवको संभव कर देनेवाले अनन्त-शक्तिसम्पन्न देवताओंसे कुछ हो सका और न वे सब भगत पुजारी, साधु संन्यासी और सन्त महन्त ही कुछ कर सके जिनका पहले भारी रौब था, जिनके पेशाबमे दिया जलता था, जो आकाशगामी कलाके द्वारा पलभरमे कहींके कहीं पहुँच जाते थे, कुछसे कुछ कर दिखलाते थे, जिनके प्रभावसे समुद्र सूख जाते थे जो अपनी एक दृष्टिमात्रसे सूर्य और चन्द्रमाकी चालको भी बदल देते थे, और जिनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए स्वयं त्रिलोकीनाथ भी दासोंकी नाई उनके द्वारपर खड़े रहते थे। इसी प्रकार बड़े बड़े जादू और जंत्र-मंत्र भी—जिनके द्वारा विषधर सर्प वशमें किये

जाते थे, अनेक अघट कार्य्य क्षणभरमें कर दिखलाये जाते थे, भूत-प्रेतादि काबूमें किये जाते थे और मूठ मारकर दूर बैठे हुए वैरीको मार सकते थे—मुसलमानोंके जुल्मके सामने कुछ भी न कर सके। अन्तमे यह हुआ कि जिनकी नाक पर कभी मक्खी भी नहीं बैठने पाती थी और जो किसी म्लेच्छकी परछाईं पड़ जानेसे तीन वार स्नान करते थे, वे ही धुजाधारी राज-पूत अपनी कन्या-ओंको मुसलमानोंको समर्पित करके उनसे मिले और उनके दास बनकर अन्य राजपूत भाइयोंसे लड़कर हिन्दूराज्योंको विध्वंस करके इस पुण्यभूमिकी कीर्त्ति अमर कर गये।

यह सब कुछ हुआ, परन्तु फिर भी वे सब देवी देवता अपने पुजा-रियोंकी कृपासे अपनी महान् अलौकिक शक्तियोंके साथ ज्योंके त्यों पूजनीय बने रहे। भक्तलोग उनको अपनी पहली ही श्रद्धाके साथ पूजते और अपने सब कार्य्य उन्हींकी कृपाके भरोसे रखते रहे। इसके सिवा अनेक जोगी जंगम, साधु संत भी नाना प्रकारके रूप धारण करके डेढ़ गजका चमीटा खड़काते हुए तथा लाल लाल आँखें करके अपनी अद्भुत शक्तियोंकी वानगी दिखाते हुए घर घर घूमते रहे और इन्हींकी अप्राकृतिक शक्तियोंके द्वारा गृहस्थोंके सारे कार्य सिद्ध होनेकी कोशिशें होती रहीं, साथ ही जादू टोनेवालोंके जंत्र-मंत्र भी उसी प्रकार काम करते रहे और वे भी असम्भवको सम्भव करके दिखलाते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि इस देशके लोग और भी नीचे गिर गये और इनकी देखादेखी मुसलमान भी पुरुषार्थहीन और विश्वासक्त होकर अपने पीरोंकी कबरें पूजनेमे लग गये, या अपने फकीरोंके मुरीद होकर उनकी दुआके भरोसे बिलकुल बेफिकर हो गये। यही नहीं; वे जंत्रों मंत्रों पर भी श्रद्धा करके और तावीजोंका एक लम्बा कंठा गलेमें डालकर निश्चिन्त हो रहे और हिन्दुओंके ही समान भाग्यवादी बनकर अपना सर्वस्व खो